# श्री राम कथा संस्थान पर्थ

## त्रैमासिक पत्रिका

वर्ष २०२२, अंक १ (जनवरी - मार्च २०२२)

# ।। सनातन रत्न ।।

होली अंक २०२२

**कार्यालय:** ३५ मायना रिट्रीट, हिलरीज, पर्थ, ऑस्ट्रेलिया – ६०२५
**वेबसाइट:** https://shriramkatha.org
**ई-मेल:** srkperth@outlook.com
**टेलीफोन:** +६१ (०८) ९४०१ १५४३

## श्री राम कथा संस्थान पर्थ उद्देश्य

- श्री राम कथा संस्थान भगवान् स्वामी श्री रामानंद जी महाराज (१४वीं शताब्दी) की शिक्षाओं पर आधारित एक सनातन वैष्णव धार्मिक संस्था है।
- श्री संस्थान का सिद्धांत धर्म, जाति, लिंग एवं नैतिक पृष्ठभूमि के आधार पर भेदभाव रहित है। 'हरि को भजे, सो हरि को होई' संस्थान का मूल मन्त्र है।
- श्री संस्थान का मानना है कि शुद्ध हृदय एवं निःस्वार्थ भाव भक्ति ईश्वर को अति प्रिय है। सभी प्रभु-भक्त एक दूसरे के भाई बहन हैं।
- ब्रह्म मनोभाव: भगवान् श्री राम, माता सीता एवं उनके विविध अवतार ही सर्वोच्च ब्रह्म हैं। वह सर्व-व्याप्त एवं विश्व के सरंक्षक हैं।
- आत्मा मनोभाव: आत्मा का अस्तित्व सर्वोच्च ब्रह्म के परमानंद पर निर्भर है। आत्मा को सर्वोच्च ब्रह्म ही निर्देशित एवं प्रबुद्ध करते हैं। श्री राम, माता सीता एवं उनके अवतार ही जीवन का अंतिम उद्देश्य मोक्ष दिलाने में समर्थ हैं।
- माया मनोभाव: माया प्रकृति के तीन गुण - सत, रज और तमस, के प्रभाव से प्राकट्य होती है। माया को सर्वोच्च ब्रह्म ही नियंत्रित करने में समर्थ हैं। सर्वोच्च ब्रह्म पर ध्यान केंद्र करने से माया का विनाश होता है, और जन्म-मृत्यु के चक्र से छुटकारा मिल मोक्ष की प्राप्ति होती है।
- श्री संस्थान इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु निरंतर सनातन धार्मिक पत्रिकाएं, पुस्तकें, पुस्तिकाएं, काव्य ग्रन्थ आदि की रचनाएं एवं प्रकाशन करती है। साथ ही, समय समय पर श्री राम एवं अन्य धार्मिक कथाओं के संयोजन का भी प्रयास करती रहती है।

**सेवा प्रदाता**

| | |
|---|---|
| डॉ यतेंद्र शर्मा: | संस्थापक एवं अध्यक्ष |
| डॉ जुगल अगरवाला: | सह-संस्थापक एवं मुख्य सलाहकार |
| श्रीमति मंजू शर्मा: | सह-संस्थापक एवं सलाहकार - प्रकाशन |
| श्री रवि मरिअप्पा: | सलाहकार - जन संपर्क |
| श्री अंशुल शर्मा: | सदस्य |

**पत्रिका सम्पादन**

| | |
|---|---|
| मुख्य सम्पादक: | डॉ यतेंद्र शर्मा |

# क्रमिका

सम्पादकीय ..... 4
पूतना निर्वाण - ब्रज होली महोत्सव ..... 7
कामदेव का त्याग – शैव होली महोत्सव ..... 23
गुरु गोविन्द सिंह - हिन्दू धर्म के रक्षक ..... 30
श्रीमद्भागवद्गीता - स्वामी श्री रामसुख दास जी के मुख से ..... 38
पढ़ो, समझो और करो - नैतिक कहानी ..... 43
बाल खंड - गुरु महिमा: स्वामी विवेकानंद जी के संस्मरण से ..... 46
श्रीमदभगवद-भोग व्यंजन खंड ..... 50
होलिका पूजन विधि ..... 53
अनमोल वचन - वेदों से उद्धृत ..... 58

# सम्पादकीय

मैं सर्व प्रथम आपको पिछले 'सनातन रत्न, वर्ष २०२१, अंक १, अक्टूबर-दिसंबर, दीपावली अंक' की सफलता की बधाई देता हूँ, तथा उन सभी संस्थाओं एवं प्रतिष्ठित व्यक्तियों का हृदय से आभार प्रस्तुत करता हूँ जिन्होंने अपना अमूल्य समय निकाल पत्रिका का विवेचन किया एवं अपने आशीर्वाद और शुभ सन्देश भेजे। मुझे अनगिनत संख्याओं में आपके प्रेम और उत्साह भरे सन्देश प्राप्त हुए। हृदय से आभार।

अगला अंक, ''सनातन रत्न, वर्ष २०२२, अंक १, जनवरी- मार्च', आपकी सेवा में प्रस्तुत है।

यह तीन महीने, जनवरी से मार्च २०२२, हिन्दू पर्वों से भरे पड़े हैं, विशेषकर ९ जनवरी गुरु गोविन्द सिंह जयन्ती, १३ जनवरी लोहड़ी, १४ जनवरी मकर संक्रांति, २४ जनवरी स्वामी विवेकानंद जयन्ती, ५ फरवरी बसंत पचमी, १६ फरवरी संत रैदास (रविदास) जयंती, १९ फरवरी शिवाजी जयंती, १ मार्च महाशिव रात्रि, १८ मार्च होली एवं चैतन्य महाप्रभु जयंती इत्यादि इत्यादि। मैं व्यक्तिगत रूप से, श्री राम कथा संस्थान के सदस्यों एवं जुड़े हुए संतों की ओर से इन सभी महान पर्वों पर आपको शुभ कामनाएं एवं बधाई देता हूँ। श्री हरि एवं माँ देवी आपको जीवन में हर बाधा से दूर रखते हुए सुख, शांति, वैभव प्रदान करते हुए धन-धान्य से सदैव सींचते रहें।

सभी उपरोक्त उत्सव, विशेषकर होली, सम्पूर्ण भारत में ही नहीं, पूरे विश्व में सभी समाजों द्वारा एक पावन उत्सव के रूप में मनाया जाता है। भारत एवं विश्व के विविध धर्म एवं सम्प्रदाय अनुयायी इस उत्सव को उसी चाव और उत्साह से मनाते हैं जैसे सनातन धर्म अनुयायी। इसका विशेष कारण यह भी है कि विभिन्न सम्प्रदायों में फाल्गुन पूर्णिमा की पावनता का विभन्नता के साथ विशेष महत्व है। जहाँ वैष्णव श्री विष्णु भक्त इसे भक्त प्रहलाद के अग्नि में न

जलने एवं होलिका (सिंहालिका) के जल जाने की प्रसन्नता में मनाते हैं, वहीं श्री कृष्ण भक्त बाल कृष्ण द्वारा पूतना निर्वाण की प्रसन्नता में मनाते हैं। शैव श्री शिव भक्त इसे कामदेव के त्याग के रूप में मनाते हैं। इस अंक में पौराणिक कथाओं पर आधारित होली से सम्बंधित दो प्रसिद्ध कथाएं, 'पूतना निर्वाण' एवं 'कामदेव का त्याग', प्रस्तुत की जा रहीं हैं। आशा है दोनों ही यह लघु कथाएं आप को रोचक लगेंगीं और हमारी नई पीढ़ी को ज्ञानवर्धक होंगी।

९ जनवरी को गुरु गोविन्द सिंह जी की जयंती है। हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए दिया गया उनका त्याग सदैव स्मरणीय है। स्वयं का ही उन्होंने बलिदान नहीं किया, परन्तु अपने प्रिय चारों पुत्रों को भारत माँ की बेदी पर चढ़ा दिया। इस अंक में उनको स्मरण करते हुए उनके जीवन का संक्षिप परिचय देने का प्रयास किया गया है।

'पढ़ो, समझो और करो' खंड में एक नैतिक कथा की प्रस्तुति भी की गई है। हमें जीवन में जो भी मिल रहा होता है, वह हमारे कर्मों के अनुसार ही मिलता है। अभाग्य से इस संसार में निःशुल्क कुछ नहीं है। जैसा बीज बोएंगे, वैसा ही काटेंगे।

अति पूज्यनीय स्वामी श्री रामसुख दास जी के मुख से उनकी श्रीमद्भागवद्गीता की विवेचना के प्रथम अध्याय के द्वितीय एवं तृतीय श्लोकों के अंश भी प्रस्तुत किये गए हैं, जो पिछले अंक से क्रमशः हैं।

बाल खंड में स्वामी विवेकानंद जी द्वारा गुरु महिमा के प्रवचन प्रस्तुत किये गए हैं। जब पूर्ण समर्पण गुरु के प्रति हो जाता है, तो वही हमारी जीवन नैया को हर मोड़ पर खेवते हैं। ऐसी आशा की जाती है कि स्वामी जी का यह प्रवचन बच्चों के लिए उपयोगी होगा।

वैष्णव भोजन खंड में प्रसाद हेतु आटे के लड्डू बनाने की विधि प्रस्तुत की गई है। आटे के लड्डू बाल कृष्ण को अति प्रिय थे।

होली पूजन की विधि का भी वर्णन किया गया गया है।

इस अंक में 'अनमोल वचन - वेदों से उद्घृत' के एक नए खंड को समाविष्ट किया गया है। हमारे ऋषिओं द्वारे बोले यह अनमोल वचन आपके जीवन का मार्ग अवश्य ही सुगम बनाएंगे, ऐसी हमारी आशा है।

आशा है यह सब प्रस्तुतियां आपके मनभावन होंगी।

एक बार फिर से होली पर बधाई एवं शुंभ कामनाएं देते हुए,

आपका अपना, प्रभु के चरणों में,

यतेंद्र शर्मा, अध्यक्ष एवं मुख्य सम्पादक

**श्री राम कथा संस्थान**

होली २०२२ अंक

# पूतना निर्वाण - ब्रज होली महोत्सव

विविध धार्मिक संप्रदाऐं, क्षेत्रीय मान्यताएं एवं प्रांतों में होली महोत्सव मनाने के अनंत कारण हैं। असुर सम्राट हिरण्यकशिपु एवं उसकी बहन होलिका (सिंहालिका) की पौराणिक कथा तो विश्व प्रसिद्ध है। असुर सम्राट हिरण्यकशिपु ने तपस्या कर भगवान ब्रह्मा से एक प्रकार से अमर होने का वरदान पा लिया था। इस वरदान के अनुसार उसे संसार का कोई भी जीव-जन्तु, देवी-देवता, राक्षस-मनुष्य, रात-दिन, पृथ्वी-आकाश, घर-बाहर, कोई नहीं मार सकता था। वरदान पाते ही वह निरंकुश हो गया। लेकिन भगवान् की लीला देखिए। उसी के गृह में उसके पुत्र रूप में भक्त प्रहलाद ने जन्म लिया। प्रहलाद भगवान विष्णु के परम भक्त थे। असुर सम्राट हिरण्यकशिपु ने समस्त विश्व में सभी को आदेश दे रखा था कि वह उसी की भगवान् रूप में स्तुति करें। लेकिन भक्त प्रहलाद ने अपने पिता को भगवान् मानने से मना कर दिया। इस से क्रोधित हो पिता ही अपने पुत्र का शत्रु बन गया। 'येन केन प्रकारेण' भक्त प्रहलाद को मारने के विविध उपाय ढूंढने लगा।

**जाको राखे साईंया, मार सके ना कोय** ।
**बाल न बांका कर सके, जो जग बैरी होय** ।।

जिसकी भगवान् विष्णु स्वयं ही रक्षा कर रहें हो, उसे कौन मार सकता है? अंत में उसने अपनी बहन होलिका (सिंहालिका) से प्रार्थना की कि वह भक्त प्रहलाद को मारने में उसकी मदद करे। उसकी बहन सिंहालिका को अग्नि देव के वरदान द्वारा दिया हुआ एक कम्बल स्वरुप वस्त्र था, जिसके ओढ़ने से अग्नि कुंड में बैठने से अग्नि में वह नहीं जल सकती थी। अतः हिरण्यकशिपु ने अपनी बहन सिंहालिका को आदेश दिया कि वह प्रह्लाद को गोदी में बिठाकर अग्नि चिता में बैठ जाए, ताकि प्रह्लाद जल जाय। लेकिन प्रभु की इच्छा। प्रहलाद बच गए, सिंहालिका जल गईं। इस प्रसन्नता के कारण हम लोग होली महोत्सव मनाते हैं।

यह तो बस एक ही कारण है, होली महोत्सव मनाने का। होली महोत्सव मनाने के और भी अनेक कारण हैं। उन्हीं में से एक अन्य कारण की हम यहां चर्चा करेंगे।

होली के ही दिन बाल कृष्ण ने नंदगांव में असुरी पूतना का वध कर उसे मोक्ष प्रदान किया था। पौराणिक कथाओं में ऐसा वर्णित है कि पूतना की मृत्यु के पश्चात उसका शरीर लुप्त हो गया था, अतः नंदगांव वासिओं ने उसका पुतला बना कर अग्नि को भेंट दिया। पूतना की मृत्यु की प्रसन्नता में जिस प्रकार उसके पुतले को अग्नि चिता में दहन कराया, उसी प्रकार होलिका जलाकर इस महोत्सव को श्री कृष्ण भक्त होली के रूप में मनाते हैं।

यह पूतना कौन थी, और बाल कृष्ण को क्यों मारना चाहती थी?

द्वापर युग में मथुरा नरेश कंस ने अपनी अति प्रिय चचेरी बहन देवकी का विवाह यादव सम्राट वसुदेव से कर दिया। बहन को इतना अधिक प्रेम करता था कि उसकी विदाई पर स्वयं ही उसके रथ का सारथी बन वह उसे यादव साम्राज्य में छोड़ने जा रहा था। तभी मार्ग में एक आकाशवाणी हुई, 'हे कंस, जिस अपनी बहन देवकी और अपने बहनोई वसुदेव को तू इतने सम्मान के साथ स्वयं रथ का सारथी बन उनके साम्राज्य में छोड़ने जा रहा है, उन्हीं की आठवीं संतान तेरा वध करेगी।'

यहां कई लोग इस पर शंका करते हैं कि आकाशवाणी तो कोई सुर अथवा भगवान् स्वयं ही कर सकते हैं। इस प्रकार आकाशवाणी कर क्यों भगवान् ने स्वयं ही अपने भावी माता पिता को संकट में डाला? इसके पीछे कई कारण

हैं। प्रभु का कोई कार्य बिना किसी कारण के नहीं होता। आकाशवाणी में आठवें पुत्र द्वारा कंस वध की भविष्यवाणी की गई थी। अब प्रमुखतः प्रथम छै देवकी के पुत्रों का कंस द्वारा हत्या एवं सातवीं पुत्री का उसके हाथ से छूटकर जाने का क्या कारण था, यह समझने का प्रयास करें।

'श्रीमददेवीभागवत महापुराण' की एक कथा के अनुसार एक बार चक्रवर्ती सम्राट परीक्षित के पुत्र चक्रवर्ती सम्राट जनमेजय ने भगवान् महर्षि वेदव्यास जी से यही प्रश्न पूछा, 'हे भगवन् महर्षि, धर्मपरायण वसुदेव जिनके पुत्र के रूप में साक्षात् भगवान विष्णु अवतरित हुए, वे कंस के कारागार में क्यों बन्द हुए, उन्होंने अपनी पत्नी देवकी के साथ ऐसा क्या अपराध किया था, जिससे कंस के द्वारा देवकी के छ: पुत्रों का वध कर दिया गया? जगत की सृष्टि करने में समर्थ उन भगवान श्रीकृष्ण ने माता देवकी के गर्भ में रहते हुए ही अपने माता पिता को बंधन से मुक्त क्यों नहीं कर दिया था? वे छ: पुत्र कौन थे जिनकी कंस ने हत्या कर दी? वह सातवीं पुत्री कन्या कौन थीं जिन्हें कंस ने पत्थर पर पटक दिया था, और वह हाथ से छूटकर आकाश में चली गईं और पुन: अष्टभुजा के रूप में प्रकट हुई?'

भगवान् महर्षि वेदव्यास जी ने तब सम्राट जनमेजय से कहा, 'हे पुत्र, कर्मों की गति बड़ी गहन होती है। कर्म की गति जानने में देवता भी समर्थ नहीं हैं, मानव की तो बात ही क्या? जब से इस त्रिगुणात्मक ब्रह्माण्ड का आविर्भाव हुआ, उसी समय से कर्म के द्वारा सभी की उत्पत्ति होती आ रही है। समस्त जीव कर्म रूपी बीज से उत्पन्न होते हैं। तत्त्वों के ज्ञाता विद्वानों ने तीन प्रकार के कर्म बताए हैं, संचित, प्रारब्ध तथा वर्तमान। कर्मों का ये त्रैविध्य इस शरीर में अवश्य सदैव विद्यमान रहता है। काल के पाश में बंधे हुए समस्त जीवों को अपने द्वारा किये गये शुभ अथवा अशुभ कर्मों का फल निश्चित रूप से भोगना ही पड़ता है। प्रत्येक जीव का प्रारब्ध निश्चित रूप से विधि के द्वारा ही निर्मित है।'

पाठकों को स्मरण होगा कि जब शोककुल गोपियों को समझाने के लिए भगवान् कृष्ण ने उद्धव को ब्रज भेजा, तो गोपियाँ कहती हैं।

**ऊधौ, कर्मन की गति न्यारी।**
**सब नदियाँ जल भरि-भरि रहियाँ सागर केहि बिध खारी॥**
**उज्ज्वल पंख दिये बगुला को कोयल केहि गुन कारी॥**
**सुन्दर नयन मृगा को दीन्हे बन-बन फिरत उजारी॥**
**मूरख-मूरख राजे कीन्हे पंडित फिरत भिखारी॥**
**सूर श्याम मिलने की आसा छिन-छिन बीतत भारी॥**

महर्षि वेदव्यास जी आगे कहते हैं कि सृष्टि के समय ब्रह्मा आदि सभी देवताओं की उत्पत्ति होती है और कल्प के अंत में क्रमश: उनका नाश भी हो जाता है। जिसके नाश में जो निमित्त बन चुका है, उसी के द्वारा उसकी मृत्यु होती है। विधाता ने जो रच दिया है, वह अवश्य होता है। इसके विपरीत कुछ नहीं होता। जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा, रोग, दु:ख अथवा सुख, जो सुनिश्चित है वह उसी रूप में अवश्य प्राप्त होता है। इसके विपरीत दूसरा सिद्धान्त है ही नहीं।

**जन्ममृत्युजराव्याधिदु:खं वा सुखमेव वा ।**
**तत्तथैव भवेत्कामं नान्यथेह विनिर्णय: ।।**

भगवन् महर्षि वेदव्यास जी आगे कहते हैं कि राग, द्वेष आदि भाव देवताओं, मनुष्यों, पशु, पक्षियों इत्यादि में सदैव विद्यमान रहते हैं। पूर्वजन्म में किये हुए वैर तथा स्नेह के कारण ये समस्त विकार शरीर के साथ सदा संलग्न रहते हैं। आदि-अंतरहित यह कर्म ही जगत का कारण है। भगवान विष्णु भी अपनी इच्छा से जन्म लेने के लिए स्वतन्त्र होते तो वे अनेक प्रकार के सुखों एवं वैकुण्ठपुरी का निवास छोड़कर निम्न योनियों (मत्स्य, कूर्म, वराह, वामन) में जन्म क्यों लेते? ब्रह्मा आदि सभी देवता भी कर्म के वश में हैं, और अपने किए कर्मों के फलस्वरूप सुख-दु:ख प्राप्त करते हैं। प्रत्यक्ष दिखाई देने वाले सूर्य और चन्द्र कर्म से ही नियमित रूप से परिभ्रमण करते हैं, तथा सबको सुख

प्रदान करते हैं, किन्तु उनके शत्रु (राहु) के द्वारा उन्हें होने वाली पीड़ा दूर नहीं होती। सूर्यपुत्र शनैश्चर 'मन्द' और चन्द्रमा 'क्षयरोगी' तथा 'कलंकी' कहे जाते हैं। बड़े बड़े देवताओं के विषय में भी विधि का विधान अटल है। भगवान विष्णु को रामावतार ग्रहण करके वनवास का दारुण कष्ट, सीता-हरण का महान दु:ख, रावण से युद्ध व पत्नी-परित्याग की असीम वेदना सहनी पड़ी। उसी प्रकार कृष्णावतार में स्वयं भगवान् विष्णु को बन्दीगृह में जन्म, गोकुल-गमन, गोचारण, कंस-वध और फिर द्वारका के लिए प्रस्थान आदि अनेक सांसारिक दु:खों को भोगना पड़ा। रामावतार के समय देवता कर्मबन्धन के कारण वानर बने थे, और कृष्णावतार में कृष्ण की सहायता के लिए देवता यादव बने थे।

महर्षि वेद व्यास कथा सुनाते हुए कहते हैं कि पुत्र जनमेजय, स्वायम्भुवमन्वन्तर में जब देवकी का पहला जन्म हुआ था, उस समय उनका नाम 'पृश्नि' तथा वसुदेव 'सुतपा' नामक प्रजापति थे। दोनों ने संतान प्राप्ति की अभिलाषा से सूखे पत्ते खाकर और कभी वायु के ही सहारे रहकर देवताओं की बारह हजार वर्षों तक तपस्या की। इन्द्रियों का दमन करके दोनों ने वर्षा, वायु, धूप, शीत आदि काल के विभिन्न गुणों को सहन किया और प्राणायाम द्वारा अपने मन के मल धो डाले। उनकी परम तपस्या, श्रद्धा और प्रेममयी भक्ति से प्रसन्न होकर श्री विष्णु उनकी अभिलाषा पूर्ण करने के लिए उनके सामने प्रगट हुए और उन दोनों से कहा कि तुम्हारी जो इच्छा हो माँग लो। तब उन दोनों ने भगवान श्री हरि जैसा पुत्र माँगा। भगवान विष्णु उन्हें तथास्तु कहकर अन्तर्धान हो गये। वर देने के बाद भगवान ने शील, स्वभाव, उदारता आदि गुणों में अपने जैसा अन्य किसी को नहीं देखा। ऐसी स्थिति में भगवान ने विचार किया कि मैंने उनको वर तो दे दिया कि मेरे सदृश्य पुत्र होगा, परन्तु इसको मैं पूरा नहीं कर सकता, क्योंकि संसार में वैसा अन्य कोई है ही नहीं। किसी को कोई वस्तु देने की प्रतिज्ञा करके पूरी ना कर सके तो उसके समान तिगुनी वस्तु देनी चाहिए, ऐसा विचारकर भगवान ने स्वयं उन दोनों के पुत्र के रूप में तीन बार अवतार लेने का निर्णय किया। इसलिए भगवान जब प्रथम बार उन दोनों के पुत्र हुए, उस समय वे 'पृश्निगर्भ' के नाम से जाने गये। दूसरे

जन्म में माता पृश्नि 'अदिति' हुईं, और सुतपा 'कश्यप' हुए। उस समय भगवान 'वामन' के रूप में उनके पुत्र हुए। फिर द्वापर में उन दोनों का तीसरा जन्म हुआ। इस जन्म में वही अदिति 'देवकी' हुईं और कश्यप 'वसुदेव' हुए और अपने वचन को सच करने के लिए भगवान विष्णु ने उनके पुत्र के रूप में श्री कृष्णावतार लिया। कश्यप मुनि और उनकी दो पत्नियों (अदिति और दिति) ने ही जल-जन्तुओं के स्वामी वरूणदेव के शापवश पृथ्वी पर वसुदेव, देवकी और रोहिणी के रूप में अवतार ग्रहण किया था। एक बार महर्षि कश्यप यज्ञ कार्य के लिए वरुणदेव की गौ ले आये। यज्ञ कार्य की समाप्ति के बाद वरुणदेव के बहुत याचना करने पर भी उन्होंने वह गौ वापस नहीं दी। तब उदास मन से वरुणदेव ब्रह्मा जी के पास गये और उनको अपना दु:ख सुनाते हुए कहा कि हे महाभाग, वह अभिमानी कश्यप मेरी गाय नहीं लौटा रहा है, अत: मैंने उसे शाप दे दिया है कि मनुष्य जन्म लेकर तुम गोपालक हो जाओ और तुम्हारी दोनों पत्नियां भी मानव योनि में उत्पन्न होकर अत्यधिक दु:खी रहें। मेरी गाय के बछड़े माता से अलग होकर बहुत दु:खी हैं और रो रहे हैं, अतएव पृथ्वीलोक में जन्म लेने पर यह अदिति भी मृतवत्सा (जन्म लेते ही बच्चों का मृत्यु को प्राप्त हो जाना) होगी। इसे कारागार में रहना पड़ेगा और उसे बहुत कष्ट भोगना होगा। वरुणदेव की बात सुनकर प्रजापति ब्रह्मा ने कश्यप मुनि को बुलाया और पूछा कि आपने लोकपाल वरुण की गाय का हरण क्यों किया? आपने गाय को क्यों नहीं लौटाया? आप ऐसा अन्याय क्यों कर रहे हैं? न्याय को जानते हुए भी आपने दूसरे के धन का हरण किया है। लोभ की ऐसी महिमा है कि वह महान से महान लोगों को भी नहीं छोड़ता है। संसार में लोभ से बढ़कर अपवित्र अन्य कोई चीज नहीं है। यह सबसे बलवान शत्रु है। यह सब जानते हुए भी महर्षि कश्यप आप इस नीच लोभवश दुराचार में लिप्त हो गये!

इस अपराध में मर्यादा की रक्षा के लिए ब्रह्माजी ने अपने प्रिय पौत्र कश्यप मुनि को शाप दे दिया कि वह अपने अंश से पृथ्वी पर यदुवंश में जन्म लेकर वहां अपनी दोनों पत्नियों के साथ गोपालन का कार्य करेंगे। कश्यप मुनि ने

अगले जन्म में वसुदेव जी, और उनकी दोनों पत्नियों ने देवकी और रोहिणी के रूप में जन्म लिया।

यह सर्व विदित है कि दक्ष प्रजापति की दिति और अदिति नाम की दो सुन्दर कन्याओं का विवाह महर्षि कश्यप के साथ हुआ था। अदिति के अत्यन्त तेजस्वी पुत्र इन्द्र हुए। भगवान विष्णु ने इन्द्र का पक्ष लेकर दिति के दोनों पुत्रों हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष को मार डाला। तब दिति ने सोचा कि मैं कोई ऐसा उपाय करूं जिससे मुझे ऐसा पुत्र प्राप्त हो जो इन्द्र को मार डाले। भगवान की कैसी माया है, लोग अपने को और अपने आत्मीय को तो बचाना चाहते हैं, लेकिन दूसरों से द्रोह करते हैं। यह द्रोह नरक में ले जाने का मार्ग होता है। इन्द्र जैसे ओजस्वी पुत्र प्राप्ति की दिति के मन में इच्छा जाग्रत हुई, अत: वह अपने पति महर्षि कश्यप जी को प्रसन्न करने के लिए उनकी सेवा करने लगी। दिति ने अपने मन का संयम कर प्रेम, विवेक, मधुर भाषण, मुस्कान व चितवन से महर्षि कश्यप जी के मन को जीत लिया। वे दिति की सेवाओं से मुग्ध होकर जड़ हो गये। उन्होंने दिति से कहा कि अब तुम जो चाहो मांग लो। दिति ने जब देखा कि वे वचनबद्ध हो गये हैं, तो उसने महर्षि कश्यप जी से प्रार्थना की कि उसे बलशाली एवं परम शक्तिसम्पन्न पुत्र देने की कृपा करें जो इन्द्र को मार दे। यह सुनकर महर्षि कश्यप जी को बहुत दु:ख हुआ, क्योंकि इन्द्र अदिति के गर्भ से महर्षि कश्यप जी के ही पुत्र हैं। उन्होंने सोचा कि माया ने मुझे पकड़ लिया। संसार में लोग स्वार्थ के लिए पति, पुत्रादि का भी नाश कर देते हैं। अब क्या हो? मैंने जो वचन दिया है, न तो वह व्यर्थ होना चाहिए और न ही इन्द्र का अनिष्ट होना चाहिए। इस प्रकार सोच विचार करके महर्षि कश्यप ने दिति को एक वर्ष का 'पुंसवन व्रत' धारण करने के लिए कहा। महर्षि कश्यप जी ने कहा कि यदि तुम एक वर्ष तक इस व्रत का पालन करोगी तो तुम्हारे जो पुत्र होगा वह इन्द्र को मारने में समर्थ होगा। इस व्रत में किसी भी प्राणी को मन, वचन या कर्म के द्वारा आप सताएं नहीं। किसी को शाप या गाली न दें। झूठ न बोलें। शरीर के नख व बाल न काटें। अन्न का भोजन न करें। शूद्र का और रजस्वला स्त्री का अन्न भी न खाएं। झूठे मुँह, संध्या के समय, बाल खोले हुये घर से बाहर न जाएं, एवं सुबह शाम न

सोएं। इस प्रकार इन निषिद्ध कर्मों का त्याग कर सदैव पवित्र और सौभाग्य के चिह्नों से सुसज्जित रहें। प्रात: गाय, ब्राह्मण, लक्ष्मी जी और भगवान नारायण की पूजा करके ही कलेवा करें। सुहागिन स्त्रियों व पति की सेवा में संलग्न रहें। यही भावना करती रहें कि पति का ओजस्व ही मेरी कोख में है।

अपने पति की बात मानकर दिति उनके ओज से सुन्दर गर्भ धारणकर 'पुंसवन व्रत' का पालन करने लगीं। वह भूमि पर सोती थीं और पवित्रता का सदा ध्यान रखती थीं। इस प्रकार जब उनका तेजस्वी गर्भकाल पूर्ण होने को आया तो दिति के अत्यन्त दीप्तिमान अंगों को देखकर अदिति को बड़ा दु:ख हुआ। उन्होंने अपने मन में सोचा कि यदि दिति के गर्भ से इन्द्र के समान महाबली पुत्र उत्पन्न होगा तो निश्चय ही मेरा पुत्र निस्तेज हो जायेगा। इस प्रकार चिन्ताग्रस्त अदिति ने अपने पुत्र इन्द्र से कहा कि इस समय दिति के गर्भ में तुम्हारा शत्रु पल रहा है। अत:, ऐसा कोई प्रयत्न करो कि गर्भस्थ शिशु नष्ट हो जाये। दिति का वह गर्भ मेरे हृदय में लोहे की कील के समान चुभ रहा है। किसी भी उपाय से तुम उसे नष्ट कर दो। जब शत्रु बढ़ जाता है तब राजयक्ष्मा रोग की भाँति वह नष्ट नहीं हो पाता, इसलिए बुद्धिमान मनुष्य का कर्तव्य है कि वह ऐसे शत्रु को अंकुरित होते ही नष्ट कर डाले। चतुर राजनीतिज्ञ वही है जिसे शत्रु के घर की एक एक बात का पता हो।

इन्द्र कोई साधारण राजनीतिज्ञ नहीं हैं। अपनी माता की बात मानकर इन्द्र मन ही मन उपाय सोचकर अपनी सौतेली माता के पास गये। पापबुद्धि इन्द्र ने ऊपर से मधुर किन्तु भीतर से विषभरी वाणी में विनम्रतापूर्वक दिति से कहा कि हे माता, व्रत के कारण आप अत्यन्त दुर्बल हो गयी हैं, अत: मैं आपकी सेवा करने के लिए आया हूँ। जिस प्रकार बहेलिया हिरन को मारने के लिए हिरन की सी सूरत बनाकर उसके पास जाता है, वैसे ही देवराज इन्द्र भी कपट वेष धारण करके व्रतपरायणा दिति के व्रत पालन की त्रुटि पकड़ने के लिए उसकी सेवा करने लगे। एक दिन व्रत के नियमों का पालन करते करते बहुत दुर्बल हो गईं दिति से इन्द्र ने कहा कि हे माता मैं आपके चरण दबाऊँगा। क्योंकि बड़ों की सेवा से मनुष्य अक्षय गति प्राप्त कर लेता है। ऐसा

कहकर इन्द्र उनके दोनों चरण पकड़कर दबाने लगे। चरण दबने से दिति को बहुत सुख हुआ और उन्हें नींद आने लगी। उस दिन वह पैर धोना भूल गईं थीं और बाल खोले ही सो गईं थीं। दिति को नींद के वशीभूत देखकर इन्द्र योगबल से अत्यन्त सूक्ष्म रूप बनाकर हाथ में शस्त्र लेकर बड़ी सावधानी से दिति के उदर में प्रवेश कर गये, और वज्र से उस गर्भस्थ बालक के सात टुकड़े कर डाले। तब वे सातों टुकड़े सूर्य के समान तेजस्वी सात कुमारों के रूप में परिणत हो गये। वज्र के आघात से गर्भस्थ शिशु रोने लगे। तब दानवशत्रु इन्द्र ने उससे 'मा रुद' अर्थात 'मत रोओ' कहा। फिर इन्द्र ने उन सातों टुकड़ों के सात सात टुकड़े और कर दिये। इस प्रकार ४९ कुमारों के रूप में होकर वे तीव्रता से रोने लगे। तब उन सबों ने हाथ जोड़कर इन्द्र से कहा कि हे देवराज, तुम हमें क्यों मार रहे हो? हम तो तुम्हारे भाई मरुद्गण हैं।

इन्द्र ने मन ही मन तब सोचा कि निश्चय ही यह सौतेली माँ दिति के व्रत का परिणाम है कि वज्र से मारे जाने पर भी इनका विनाश नहीं हुआ। ये एक से अनेक हो गये, फिर भी उदर की रक्षा हो रही है। इसमें सन्देह नहीं कि ये अवध्य हैं, इसलिए ये देवता हो जायँ। जब ये रो रहे थे, उस समय मैंने इन गर्भ के बालकों को 'मा रुद' कह कर चुप कराया था, इसलिए ये मरुद्गण नाम से प्रसिद्ध होंगे। इन्द्र ने सौतेली माता के पुत्रों के साथ शत्रुभाव न रखकर उन्हें सोमपायी (सोमरस का पान करने वाले) देवता बना लिया।

छली इन्द्र द्वारा अपने गर्भ को विकृत किया जानकर दिति जाग गईं और दु:खी होकर क्रोध करने लगीं। यह सब मेरी बहन अदिति द्वारा कराया गया है, ऐसा जानकर दिति ने कुपित होकर अदिति और इन्द्र दोनों को शाप दे दिया कि इन्द्र ने छलपूर्वक मेरा गर्भ छिन्न-भिन्न कर डाला है, उसका त्रिभुवन का राज्य शीघ्र ही नष्ट हो जाय। जिस प्रकार पापिनी अदिति ने गुप्त पाप के द्वारा मेरे गर्भ को नष्ट करवा डाला है, उसी प्रकार उसके पुत्र भी क्रमश: उत्पन्न होते ही नष्ट हो जायेंगे और वह पुत्र शोक से अत्यन्त चिन्तित होकर कारावास में रहेगी। तब महर्षि कश्यप जी ने दिति को शांत करते हुए कहा कि हे देवी,

तुम क्रोध मत करो। तुम्हारे ये ४९ पुत्र मरुद् देवता होंगे, जो इन्द्र के मित्र बनेंगे। तुम्हारा शाप द्वापर युग में सफल होगा। वरुणदेव ने भी उसे शाप दिया है। इन दोनों शापों के संयोग से यह अदिति मनुष्य योनि में जन्म लेकर देवकी के रूप में उत्पन्न होगी और अपने किये कर्म का फल भोगेगी। सबके शासक, धर्म के रक्षक और तीनों लोकों के स्वामी इन्द्र ने जब ऐसा निन्दित कर्म कर डाला, तब फिर कौन मनुष्य पाप नहीं कर सकता? ब्रह्मा से लेकर तृणपर्यन्त स्थावर जंगम सभी प्राणी माया के वशीभूत रहते हैं और वह माया उनके साथ क्रीड़ा करती रहती है। यह माया सभी को मोह में डाल देती है और जगत में निरन्तर विकार उत्पन्न किया करती है। वेदों में कहा गया है कि सतगुण से सभी देवता, रजोगुण से मनुष्य तथा तमोगुण से पशु, पक्षी आदि जीव उत्पन्न होते हैं। अतएव जब सतगुण से उत्पन्न देवताओं में भी निरन्तर आपस में वैरभाव रहता है तब नर-नारीओं, पशु-पक्षियों में परस्पर जाति वैर उत्पन्न होने में क्या आश्चर्य? देवता भी सदा असंतुष्ट रहते हुए द्वेषपरायण होकर आपस में विरोधभाव रखते हैं। चन्द्रमा ने जान बूझकर अपने गुरु बृहस्पति की पत्नी का बलपूर्वक हरण कर लिया। उसी प्रकार इन्द्र ने महर्षि गौतम की पत्नी के साथ अनाचार करना चाहा। जगत्पति भगवान विष्णु ने वामन रूप धारणकर छल से राजा बलि को ठग लिया। लेकिन विजय राजा बलि की ही हुई, जिन्होंने समस्त भूमण्डल का दान कर दिया। भगवान विष्णु जो त्रिविक्रम कहलाते थे, छलने के लिए वामन (बौना) बने और उन्हें राजा बलि का द्वारपाल बनना पड़ा। ब्रह्माजी वेदकर्ता और जगत की सृष्टि करने वाले हैं किन्तु वे भी सरस्वती को देखकर विकल हो गये। जब शिवजी की भार्या (पत्नी) सती दक्षयज्ञ में जलकर भस्म हो गयीं, तब लोगों का दुःख दूर करने वाले होते हुए भी शिवजी शोक संतप्त हो गये और कामाग्नि से जलते हुए यमुना नदी में कूद पड़े। तब उनके ताप के कारण यमुना जी का जल श्यामवर्ण हो गया। शिव जी भृगु ऋषि के वन में जाकर दिगम्बर होकर विहार करने लगे तब शान्ति प्राप्त करने के लिए उन्होंने दानवों के द्वारा निर्मित बावली का जल पिया। उन्हें अपने कर्म के प्रभाव से ही रूद्र को मुण्डों की माला धारण करनी पड़ी। इन्द्र को बैल बनकर पृथ्वी पर सूर्यवंशी राजा ककुत्स्थ का वाहन बनना पड़ा। भगवान श्रीराम भी काम से व्याकुल होकर सीता के वियोग में रोते हुए वृक्षों

से पूछते फिरते थे कि सीता कहां चली गयी? काम, क्रोध, अमर्ष, शोक, वैर, प्रेम, सुख, दु:ख, भय, दीनता, सरलता, पाप, पुण्य, वचन, मारण, पोषण, चलन, ताप, लोभ, दम्भ, मोह, कपट और चिन्ता आदि के भाव मनुष्य जन्म में विद्यमान रहते हैं। वे भगवान विष्णु भी शाश्वत सुख का त्याग करके इन भावों से ग्रस्त मानव का जन्म (परशुराम, राम, कृष्ण) बार-बार लेते हैं। इस प्रकार इस संसार में सभी प्राणी विधि के नियमों में बँधकर सदा सुख तथा दु:ख से युक्त रहते हैं। यह सम्पूर्ण चराचर जगत योगमाया के अधीन रहता हैं। ब्रह्मा से लेकर स्थावर जंगम सभी प्राणी सत्व, रज, तम इन गुणों के द्वारा उन्हीं में गुंथा हुआ है। इस प्रकार योगमाया की बड़ी महिमा है। ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, वरुण, यम, कुबेर, अग्नि, सूर्य, चन्द्र आदि देवता, ऋषि, मुनि, ये सब बाजीगर के अधीन कठपुतली की भांति सदा योगमाया के अधीन रहते हैं। भगवान के सभी अवतार रस्सी से बंधे हुए इन्हीं नियमों से नियन्त्रित रहते हैं। भगवान विष्णु भी कभी वैकुण्ठ में और कभी क्षीरसागर में आनन्द लेते हैं, कभी अत्यधिक बलशाली दानवों के साथ युद्ध करते हैं, कभी योगनिद्रा के वशीभूत होकर शयन करते हैं, कभी मल-मूत्र तथा स्नायु से भरे गर्भ में वास से होने वाले दु:ख भोगने को विवश हो जाते हैं। इस प्रकार सभी देवता कालपाश में आबद्ध रहते हैं। अत: मनुष्य हो या देवता, किए गये शुभ या अशुभ कर्मों का फल तो अवश्य ही सबको भोगना पड़ता है। इसीलिए जगत की सृष्टि करने में समर्थ उन भगवान श्री कृष्ण ने माता देवकी के गर्भ में रहते हुए भी अपने माता पिता को बंधन से मुक्त नहीं किया। कर्मफल भोगने के बाद ही वसुदेव व देवकी को श्रीकृष्ण ने कंस का वधकर कारागार से मुक्त किया और उनका कष्ट दूर किया।

देवकी के वे छ: पुत्र कौन थे जिनका कंस ने वध कर दिया, अब मैं तुम्हें यह बताऊंगा। स्वायम्भुव मन्वन्तर में मरीचि और उनकी पत्नी ऊर्णा के छ: अत्यन्त बलशाली व धर्मपरायण पुत्र थे। एक बार ब्रह्माजी को सरस्वती के साथ विहार करते देखकर ये हंस पड़े। ब्रह्माजी ने इन्हें शाप दे दिया कि तुम लोगों का पतन हो जाये और तुम दैत्ययोनि में जन्म लो। वे छहों पुत्र कालनेमि के पुत्र के रूप में उत्पन्न हुए। अगले जन्म में वे हिरण्यकशिपु के पुत्र हुए। इन्हें अपने

पूर्वजन्मों का ज्ञान था। अत: पूर्व शाप से भयभीत होकर ये तप करने लगे। इससे ब्रह्माजी ने प्रसन्न होकर इन्हें वर दे दिया कि देवता, दानव, नाग, गंधर्व, सिद्ध आदि कोई तुम्हारा वध न कर सकेगा। हिरण्यकशिपु चूंकि देवताओं का विरोधी था, इससे अपने पुत्रों से कुपित हो पिता की उपेक्षा करने पर उनको शाप दे दिया और उनका परित्याग कर दिया। उसने उन्हें पाताल लोक जाने की आज्ञा दे दी। तब वह इस पृथ्वी पर 'षड्गर्भ' नाम से विख्यात हुए। वह बहुत दिनों तक निद्रा के वशीभूत रहे फिर क्रम से प्रतिवर्ष देवकी के गर्भ से उत्पन्न होते रहे। पूर्वजन्म का उनका पिता कालनेमि जो अब कंस के रूप में अवतरित हुआ था, उसने उनको जन्म लेते ही मार डाला। इस प्रकार हिरण्यकशिपु के शाप से वे क्रम से एक एक करके देवकी के गर्भ में आते गये और कंस पूर्व शाप से प्रेरित होकर उन देवकी पुत्रों का वध करता गया। इसके बाद शेषनाग के अंशावतार बलभद्र जी देवकी के सातवें गर्भ में आये। योगमाया ने अपने योगबल से उस गर्भ को खींचकर गोकुल में नंदबाबा के घर रह रहीं वसुदेव जी की पत्नी रोहिणी के गर्भ में स्थापित कर दिया। फिर देवताओं का कार्य सिद्ध करने तथा पृथ्वी का भार उतारने के लिए जगत्पति भगवान विष्णु देवकी के आठवें गर्भ में विराजमान हो गये। वह कन्या कौन थी, जिसे कंस ने पत्थर पर पटक दिया था और वह हाथ से छूटकर आकाश में चली गयी और पुन: अष्टभुजा के रूप में प्रकट हुई, इसे मैं तुम्हें अब बताऊंगा। देवताओं का कार्य सिद्ध करने के उद्देश्य से भगवती योगमाया ने अपनी इच्छा से यशोदा के गर्भ में प्रवेश किया। भाद्रप्रद मास के कृष्णपक्ष में रोहिणी नक्षत्र युक्त अष्टमी तिथि की अर्धरात्रि की शुभबेला में देवकी जी ने परम सुन्दर अद्भुत बालक को जन्म दिया। उसी समय योगमाया के अंश से दिव्यरूपमयी त्रिगुणात्मका भगवती ने यशोदा के गर्भ से अवतार लिया। श्रीमदभागवत महापुराण के अनुसार जब वसुदेव जी श्री कृष्ण को लेकर नंदबाबा के घर पहुँचे तब स्वयं भगवती ने सैरन्ध्री (परिचारिका) का रूप धारणकर उस अलौकिक बालिका को अपने करकमलों से वसुदेव जी को दे दिया। वसुदेवजी भी अपने पुत्र श्री कृष्ण को देवीरूपा सैरन्ध्री के करकमल में रखकर योगमायास्वरूप उस बालिका को लेकर कारागार में लौट आए। कारागार में पहुँचकर उन्होंने देवकी की शय्या पर बालिका को लिटा दिया।

इतने में कन्या ने उच्च स्वर में रोना प्रारम्भ कर दिया। रोने का स्वर सुनते ही कंस तुरन्त वहां आ पहुंचा। वसुदेव जी ने रोते हुए उस कन्या को कंस के हाथों में रख दिया। कन्या को देखकर कंस ने सोचा कि आकाशवाणी तथा नारदजी के वचन दोनों ही गलत सिद्ध हुए। ऐसा सोचकर उस निर्मम कंस ने बालिका के दोनों पैर पकड़कर पत्थर पर पटका। किन्तु वह कन्या कंस के हाथ से छूटकर आकाश में चली गयी। दिव्य रूप धारणकर उस कन्या ने मधुर स्वर में कहा कि अरे पापी, मुझे मारने से तुम्हारा क्या लाभ होगा, तेरा महाबलशाली शत्रु तो जन्म ले चुका है। ऐसा कहकर वह कल्याणकारिणी भगवतीस्वरूपा कन्या आकाश में चली गईं।

हम चर्चा कर रहे थे कि जब कंस अपनी बहन देवकी एवं बहनोई वसुदेव को स्वयं सारथी बन उन्हें यादव साम्राज्य में छोड़ने जा रहा था तो एक आकाशवाणी हुई। कंस इस आकाशवाणी को सुनकर बुरी तरह से भयभीत हो गया और देवकी और वासुदेव को कारागार में कैद कर दिया। कंस ने दोनों को इस शर्त पर जीवित रखा कि जो भी उनके संतान होगी उसे वे कंस को सौंप देंगे ताकि वो उसको मार सके।

वसुदेव जी और देवकी जी ने ऐसा ही किया। जब भगवान विष्णु ने कृष्ण के रूप में उनके आठवें पुत्र के रूप में अवतार लिया तो उन्होंने वसुदेव जी से कहा कि वे उन्हें वृंदावन में नंद बाबा के यहां छोड़ आएं और उनके यहां जो कन्या जन्मी है उसे लाकर कंस को सौंप दें। वसुदेव ने ऐसा ही किया। कंस ने जब इस कन्या को मारने के लिए हाथों को उठाया तो कन्या अदृश्य हो गई। तभी पुन: आकाशवाणी हुई कि जिसे वह मारना चाहता है, उसने तो गोकुल में जन्म ले लिया है।

भगवान श्रीकृष्ण का जन्म वसुदेव जी और देवकी जी के आठवें पुत्र के रूप में भाद्रपद मास की कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि और रोहिणी नक्षत्र में रात्रि १२ बजे हुआ था। कंस को मारने वाले का जन्म वृंदावन में हो चुका है, इस बात से वह इतना भयभीत हो गया कि उसने भद्रापद मास की कृष्ण पक्ष की

अष्टमी के दिन जन्म लेने वाले सभी बच्चों को मारने के लिए पूतना को वृंदावन भेजा।

पूतना कंस की एक अति प्रिय सेविका थी। वह पूर्वजन्म में सम्राट बलि की पुत्री एक राजकन्या थी। पूर्वजन्म में पूतना का नाम रत्नमाला था। एक दिन सम्राट बलि के यहां भगवान वामन पधारे। भगवान वामन की सुंदर और मनमोहक छवि देखकर रत्नमाला के मन में ममत्व जाग उठा। भगवान वामन को देखकर वह मन ही मन सोचने लगी कि मेरा भी ऐसा ही पुत्र हो ताकि वह उसे हृदय से लगाकर दुग्धपान कराए। भगवान ने उसकी मन की इच्छा को जान लिया, और तथास्तु कहा। लेकिन इसके बाद भगवान ने सम्राट बलि का अहंकार दूर करने के लिए तीन पग में भूमि नाप दी। सम्राट बलि समझ गए और अपनी त्रुटि का उन्हें अनुभव हो गया। सम्राट बलि ने वामनदेव से क्षमा मांगी। इस घटना को रत्नमाला दूर से देख रही थीं। रत्नमाला को प्रतीत हुआ कि उसके पिता का घोर अपमान हुआ है। इससे वह क्रोधित हो उठीं। उन्होंने मन ही मन भगवान को बुरा भला कहना आरंभ कर दिया और सोचने लगीं कि वामन जैसा अगर पुत्र हुआ जिसने मेरे पिता का अपमान किया है तो मैं इसे विष दे देती। भगवान ने उसके इस भाव को भी जानकर तथास्तु कह दिया।

अगले जन्म में भगवान द्वारा तथास्तु कहने के कारण पूतना ने राक्षसी के रूप में जन्म लिया। पूतना कंस की सबसे विश्वासपात्र सेविका बन गईं। कंस ने अष्टमी की तिथि के दिन जन्म लेने वाले सभी बच्चों को मारने का आदेश उन्हें दिया। आदेश मिलने के बाद पूतना गोकुल पहुंच गई। पूतना भेष बदलने में विशेषज्ञ थी। उसने सुंदर स्त्री का भेष धारण किया और अपने स्तनों में प्राणघातक विष लगा लिया। गोकुल में प्रत्येक बच्चे को जो भाद्रपद कृष्ण पक्ष अष्टमी को पैदा हुआ था, उसे विषयुक्त स्तनों से दुग्धपान कराते हुए मार डाला। भगवान कृष्ण को भी वह अपने विषयुक्त स्तनों से दुग्धपान कराने लगी। भगवान ने उसे पहचान लिया और उसका वध कर दिया। इस प्रकार भगवान के हाथों पूतना का वध हुआ और प्रभु ने उसे जन्म मरण के बंधन से

मुक्त कर दिया। वहीं पूतना की दुग्ध और विष पिलाने की इच्छा को भी पूर्ण किया।

चूँकि पूतना तो एक देवकन्या थी, अतः उसके निर्वाण के पश्चात उसका शरीर लुप्त हो गया। तब गोप-गोपियों ने पूतना का एक पुतला बना उसको अग्नि में समर्पित किया। पूतना की मृत्यु से एक प्रसन्नता की लहर दौड़ पड़ी। जिस दिन पूतना का निर्वाण हुआ, वह फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा का दिन अर्थात होली का ही दिन था। उस दिवस से गोकुल वासी पूतना की मृत्यु से प्रसन्न हो होली मनाते हैं।

श्री कृष्ण को जब पूतना ने विषयुक्त स्तनों से दुग्ध पिलाकर उनको मारना चाहा, और भगवान् ने उसे निर्वाण देने के लिए उसके स्तनों से दुग्ध पान किया भी, इससे श्री कृष्ण का रंग गहरा नीला हो गया। अपने इस नीले रंग के कारण श्री कृष्ण स्वयं को बाकी सब गोप-गोपियों से अलग महसूस करने लगे, और अपनी लीला में उन्होंने माँ यशोदा को कहा भी।

**यशोमत मैया से बोले नंदलाला ।**
**राधा क्यों गोरी मैं क्यों काला ।।**

उन्होंने ऐसी लीला कि हे माँ मुझे मेरे नीले/ काले रंग के कारण राधा और गोपियां पसन्द नही करेंगी। जब श्री कृष्ण ने यह शिकायत माँ यशोदा से की तो माँ बोलीं, 'अरे कन्हैया, तू राधा और गोपियों पर ऐसा रंग डाल दे जो वह भी तेरे जैसी ही हो जांय।' यहां से प्रारम्भ हुआ श्री कृष्ण का राधा और गोपियों से होली खेलना, जो उनके प्रेम का प्रतीक बन गया।

रीतिकालीन और भक्तिकालीन कवियों ने राधा कृष्ण की होली खेलने की लीला को बड़े ही अछे ढंग से दर्शाया है। महान कवि पद्माकर जी लिखते हैं:

**फाग के अभीरन में, गहि गोविंदै लै गई।**
**भीतर गोरी भाई करी मन की, पदमाकर ऊपर नाई।।**
**अबीर की झोरी छीन, पितांबर कम्मर ते सु बिदा दई।**
**मीड़ कपालन रोरी नैन नचाय, कही मुसकाय।।**
**फाग के अभीरन में, गहि गोविंदै लै गई।**

महान कृष्ण भक्त रसखान लिखते हैं।

**फागुन लाग्यो जब तें ब्रजमंडल में धूम मच्यौ है।**
**नारि नवेली बचै नहिं एक विसेख यहै सबै प्रेम अच्यौ है।।**

अन्य कृष्ण भक्त श्री सूरदास जी के पदों में होली के महोत्सव पर गोपियों द्वारा श्री कृष्ण को रिझाने का बड़ा ही अच्छा चित्रण किया गया है।

श्री कृष्ण की पुकार है, होली का बहाना है, बनी ठनी गोपियाँ पुकार सुन कर निकल पड़ी हैं, और होली के बहाने कृष्ण को चिढ़ाती हैं। उनसे मनमानी करने की पूरी छूट मिल गई है उन्हें आज के दिन।

**हरि संग खेलति सब फाग।**
**इहिं मिस करति प्रगट गोपी, उर अंतर को अनुराग।**
**सारी पहिरी सु रंग, कसि कंचुकी, काजर दे दे नैन।।**
**बनि बनि निकसी निकसी भई ठाढ़ी, सुनि माधो के बैन।**
**लला फिरी अइयों खेलन होरी।**
**हरि संग खेलति सब फाग।।**

आइए हम भी आज होली महोत्सव पर श्री कृष्ण एवं माँ राधा की लीलाओं का स्मरण कर उनसे आशीर्वाद लें।

**जय श्री कृष्ण, जय श्री राधे।**

# कामदेव का त्याग – शैव होली महोत्सव

देवताओं एवं जन मानस की रक्षा हेतु कामदेव ने इसी दिवस, फागुन शुक्लपक्ष पूर्णिमा, को अपने प्राण त्याग दिए थे। शिव भक्त कामदेव के त्याग को स्मरण कर जिस कारण शिव-पार्वती का विवाह एवं उनके पुत्र कार्तिकेय जी का जन्म संभव हो सका जिन्होंने तारक असुर को मार कर शान्ति स्थापित की, इस प्रसन्नता में होली महोत्सव मनाते हैं।

आपको स्मरण होगा कि भगवान् शिव की पत्नी सती जी ने अपने पिता दक्ष के यज्ञ में भगवान् शिव शंकर का भाग न देख और उनका अपमान सहन न होने के कारण प्राण त्याग दिए थे। यहां कभी कभी आम नर-नारी यह शंका करते हैं कि माँ सती तो देवी थीं। वह तो स्वयं अपनी दिव्य शक्ति से यज्ञ को नष्ट कर सकती थीं। फिर उन्हें प्राण त्याग करने की क्या आवश्यकता पड़ गई? इससे पहले के लेख में इस विषय पर चर्चा की गई है कि सभी देवी-देवता, नर-नारी इत्यादि प्रकृति के नियमों से बंधे हैं। ऐसे ही एक नियम पालन हेतु माँ सती ने अपने प्राण त्याग दिए। प्रजापति दक्ष ने प्रकृति माँ को अपने दिए हुए वचन को भंग किया। भगवान् शिव शंकर का वह सदैव अपमान करते रहते थे, इसका दंड देना भी आवश्यक था। उनको दण्डित करने के लिए ही माँ सती ने अपने प्राण त्यागे। प्रभु ने इसकी रचना तभी कर दी थी जब सती जी की बुद्धि को भ्रमित कर दिया।

जब श्री राम अपने वनवास समय में सीता हरण पर सामान्य नरों की तरह विलाप करते हुए सीता को खोज रहे थे, तब शिव शंकर महादेव ने तो उन्हें परमपिता समझ उनका अभिवादन किया, लेकिन भगवान् श्री राम ने सती की बुद्धि को फेर दिया जिससे उन्होंने उन्हें एक साधारण नृप ही जाना। माँ सती ने भगवान् श्री राम की परीक्षा लेने के लिए माँ सीता का रूप धारण कर

लिया। जब जगत पिता शिव शंकर ने यह जाना तो उन्होंने सती का पत्नी के रूप में त्याग कर दिया। पत्नी का मानसिक त्याग करने के बाद शिव जी समाधि में लीन हो गए। जब सहस्त्रों वर्ष बाद उनकी समाधि टूटी, उसी समय दक्ष प्रजापति ने एक बड़े यज्ञ का आयोजन किया था। प्रजापति दक्ष भगवान् शिव शंकर से अप्रसन्न थे क्योंकि वह ऐसा सोचते थे कि शिव उन्हें वह आदर नहीं देते जो सम्बन्ध के अनुसार ससुर को एवं उनके प्रजापति पद के अनुसार उन्हें मिलना चाहिए। इसी अप्रसन्नता के कारण उन्होंने भगवान् शिव एवं सती जी को इस यज्ञ में भाग लेने के लिए आमंत्रित नहीं किया।

सती जी ने देखा कि विमानों में देवतागण उनके पिता के निवास पर जा रहे हैं। उन्होंने शिव जी से इसका कारण पूछा। तब शिवजी ने सब बातें बतलाईं। पिता के यज्ञ की बात सुनकर सती बहुत प्रसन्न हुईं और सोचने लगीं कि यदि महादेव जी मुझे आज्ञा दें, तो इसी बहाने कुछ दिन पिता के घर जाकर रहूँ।

**पति परित्याग हृदयँ दुखु भारी, कहइ न निज अपराध बिचारी ।**
**बोली सती मनोहर बानी, भय संकोच प्रेम रस सानी ।।**

उनके हृदय में पति द्वारा त्यागी जाने का बड़ा भारी दुःख था, पर अपना अपराध समझकर वे कुछ कहती न थीं। साहस जुटा सती जी भय, संकोच और प्रेमरस में सनी हुई मनोहर वाणी से बोलीं।

सती जी भगवान् शिव शंकर से बोलीं, 'हे प्रभो मेरे पिता के घर बहुत बड़ा उत्सव है। यदि आपकी आज्ञा हो तो हे कृपाधाम, मैं आदर सहित उसे देखने जाऊँ।'

शिव जी ने कहा, 'तुमने बात तो अच्छी कही। यह मेरे मन को भी पसंद आई पर तुम्हारे पिता ने हमें निमंत्रण नहीं भेजा, यह अनुचित है। दक्ष ने अपनी सब पुत्रीओं को बुलाया है, किन्तु हमारे बैर के कारण उन्होंने तुमको भी भुला दिया। यद्यपि इसमें संदेह नहीं कि मित्र, स्वामी, पिता और गुरु के घर बिना

बुलाए भी जाया जा सकता है परन्तु अगर कोई वहां विरोध मानता हो, तो उसके घर जाने से कल्याण नहीं होता।'

यद्यपि शिव जी ने सती जी को बहुत प्रकार से समझाया, पर होनहारवश सती जी के हृदय में बोध नहीं हुआ। जब सती जी किसी प्रकार भी नहीं मानी, तब त्रिपुरारि महादेवजी ने अपने मुख्य गणों को साथ देकर उनको बिदा कर दिया।

**सतीं जाइ देखेउ तब जागा, कतहूँ न दीख संभु कर भागा ।**

जब सती ने जाकर यज्ञ देखा तो वहाँ कहीं शिवजी का भाग दिखाई नहीं दिया।

**सिव अपमानु न जाइ सहि हृदयँ न होइ प्रबोध ।**
**सकल सभहि हठि हटकि तब बोलीं बचन सक्रोध ।।**

उनसे शिवजी का अपमान सहा नहीं गया। इससे उनके हृदय में कुछ भी प्रबोध नहीं हुआ। तब वे सारी सभा को हठपूर्वक डाँटकर क्रोध भरे वचन बोलीं।

**सुनहु सभासद सकल मुनिंदा, कही सुनी जिन्ह संकर निंदा ।**
**सो फलु तुरत लहब सब काहूँ, भली भाँति पछिताब पिताहूँ ।।**

'हे सभासदों और सब मुनीश्वरो, सुनो। जिन लोगों ने यहाँ शिवजी की निंदा की या सुनी है, उन सबको उसका फल तुरंत ही मिलेगा और मेरे पिता दक्ष भी भली-भाँति पछताएँगे।'

**तजिहउँ तुरत देह तेहि हेतू, उर धरि चंद्रमौलि बृषकेतू ।**
**अस कहि जोग अगिनि तनु जारा, भयउ सकल मख हाहाकारा ।।**

'चन्द्रमा को ललाट पर धारण करने वाले वृषकेतु शिव जी को हृदय में धारण करके मैं इस शरीर को तुरंत ही त्याग दूँगी। ऐसा कहकर सती जी ने योगाग्नि में अपना शरीर भस्म कर डाला।'

सती जी का मरण सुनकर शिव जी के गण यज्ञ विध्वंस करने लगे। यज्ञ विध्वंस होते देखकर मुनीश्वर भृगुजी ने उसकी रक्षा की।

ये सब समाचार जब शिव जी को मिले, तब उन्होंने क्रोध करके वीरभद्र को भेजा। दक्ष की जगत्प्रसिद्ध वही गति हुई, जो शिवद्रोही की हुआ करती है।

**सतीं मरत हरि सन बरु मागा, जनम जनम सिव पद अनुरागा ।**
**तेहि कारन हिमगिरि गृह जाई, जनमीं पारबती तनु पाई ।।**

सती ने मरते समय भगवान हरि से यह वर माँगा था कि मेरा जन्म-जन्म में शिव जी के चरणों में अनुराग रहे। इसी कारण उन्होंने हिमाचल के घर जाकर पार्वती के शरीर से पुनर्जन्म लिया।

सती के मरण के बाद शिव शंकर भगवान् वैरागी हो गए और उन्होंने समाधि लगा ली।

उसी समय तारक नाम का एक अत्यंत शक्तिशाली असुर हुआ। उसने सब लोक और लोकपालों को जीत लिया। सब देवता सुख और सम्पत्ति से रहित हो गए। वह अजर-अमर था, इसलिए किसी से जीता नहीं जाता था। देवता उसके साथ बहुत तरह की लड़ाइयाँ लड़कर हार गए। तब उन्होंने ब्रह्माजी के पास जाकर पुकार मचाई। ब्रह्माजी ने सब देवताओं को दुःखी देखा और कहा, 'इस दैत्य की मृत्यु तभी होगी जब शिवजी के वीर्य से पुत्र उत्पन्न हो और वह इसको युद्ध में जीते। सती जी ने जो दक्ष के यज्ञ में देह का त्याग किया था, उन्होंने अब हिमाचल के घर जाकर जन्म लिया है। उन्होंने शिव जी को पति बनाने के लिए घोर तप किया है। इधर शिव जी सब छोड़ समाधि लगाए बैठे

हैं। तुम जाकर कामदेव को शिव जी के पास भेजो। वह शिवजी के मन में क्षोभ उत्पन्न करे (उनकी समाधि भंग करे)। तब हम जाकर शिव जी के चरणों में सिर रख देंगे और विवश कर उनका विवाह करा देंगे।'

ब्रह्मा जी के वचन सुन देवताओं ने बड़े प्रेम से कामदेव की स्तुति की। तब विषम (पाँच) बाण धारण करने वाले और मछली के चिह्नयुक्त ध्वजा वाले कामदेव प्रकट हुए। देवताओं ने कामदेव से अपनी सारी विपत्ति कही। सुनकर कामदेव ने मन में विचार किया और हँसकर देवताओं से कहा कि शिव जी के साथ विरोध करने में मेरी कुशल नहीं है। फिर भी मैं तुम्हारा काम करूँगा क्योंकि वेद दूसरे के उपकार को परम धर्म कहते हैं। जो दूसरे के हित के लिए अपना शरीर त्याग देता है, संत सदा उसकी बड़ाई करते हैं। इस प्रकार कहकर और सबको सिर नवाकर कामदेव अपने पुष्प के धनुष को हाथ में लेकर (वसन्तादि) सहायकों के साथ चले। चलते समय कामदेव ने हृदय में ऐसा विचार किया कि शिव जी के साथ विरोध करने से मेरा मरण निश्चित है।

शिव जी के समाधि स्थल पर पहुँच कामदेव ने बहुत प्रयास किए लेकिन शिव जी की समाधि टूटने का नाम ही नहीं ले रही थी। तब अपना मरण जान कामदेव ने अंतिम प्रयास किया। उन्होंने पुष्प धनुष पर अपने (पाँचों) बाण चढ़ाए और अत्यन्त क्रोध से लक्ष्य की ओर ताककर उन्हें कान तक तान लिया।

**छाड़े बिषम बिसिख उर लागे। छूटि समाधि संभु तब जागे ॥**
**भयउ ईस मन छोभु बिसेषी। नयन उघारि सकल दिसि देखी ॥**

कामदेव ने तीक्ष्ण पाँच बाण छोड़े, जो शिवजी के हृदय में लगे। तब उनकी समाधि टूट गई और वे जाग गए। ईश्वर शिव जी के मन में बहुत क्षोभ हुआ। उन्होंने आँखें खोलकर सब ओर देखा। जब आम के पत्तों के मध्य में छिपे हुए कामदेव को देखा तो उन्हें बड़ा क्रोध हुआ, जिससे तीनों लोक काँप उठे। तब

शिव जी ने अपना तीसरा नेत्र खोला। तीसरे नेत्र के खुलने और उनकी दृष्टि पड़ते ही कामदेव जलकर भस्म हो गए।

**सौरभ पल्लव मदनु बिलोका। भयउ कोपु कंपेउ त्रैलोका ॥**
**तब सिवँ तीसर नयन उघारा। चितवन कामु भयउ जरि छारा ॥**

तब कामदेव की पत्नी रति अपने पति की यह दशा देखते ही मूर्च्छित हो गईं। रोती, चिल्लाती और भाँति भाँति से करुणा करती हुई वह शिवजी के पास गईं। अत्यन्त प्रेम के साथ अनेकों प्रकार से विनती करके हाथ जोड़कर सामने खड़ी हो गईं।

**जोगी अकंटक भए पति गति सुनत रति मुरुछित भई ।**
**रोदति बदति बहु भाँति करुना करति संकर पहिं गई ॥**
**अति प्रेम करि बिनती बिबिध बिधि जोरि कर सन्मुख रही ।**
**प्रभु आसुतोष कृपाल सिव अबला निरखि बोले सही ॥**

शीघ्र प्रसन्न होने वाले कृपालु शिवजी अबला को देखकर सुंदर सान्त्वना देने वाले वचन बोले, 'हे रति, अब से तेरे स्वामी का नाम अनंग होगा। वह बिना ही शरीर सबको व्यापेगा। अब तू अपने पति से मिलने की बात सुन। जब पृथ्वी के बड़े भारी भार को उतारने के लिए यदुवंश में श्री कृष्ण का अवतार होगा, तब तेरा पति उनके पुत्र (प्रद्युम्न) के रूप में उत्पन्न होगा। मेरा यह वचन अन्यथा नहीं होगा।'

**जब जदुबंस कृष्न अवतारा। होइहि हरन महा महिभारा ।।**
**कृष्न तनय होइहि पति तोरा। बचनु अन्यथा होइ न मोरा ।।**

शिवजी के प्रिय वचन सुन एवं उनको शीश नवा तब रति चली गईं।

इधर जब ब्रह्मादि देवताओं ने ये सब समाचार सुने तो वे वैकुण्ठ को चले। वहाँ से विष्णु और ब्रह्मा सहित सब देवता वहाँ गए, जहाँ कृपा के धाम शिवजी थे। उन सबने शिवजी की अलग अलग स्तुति की। तब शशिभूषण शिवजी प्रसन्न हो गए।

शिवजी बोले, 'हे देवताओ, कहिए, आप किसलिए आए हैं?'

ब्रह्माजी ने कहा, 'हे प्रभो, आप अन्तर्यामी हैं, तथापि हे स्वामी, भक्तिवश मैं आपसे विनती करता हूँ कि सब देवताओं के मन में ऐसा परम उत्साह है कि हे नाथ, वह अपनी आँखों से आपका विवाह देखना चाहते हैं।'

ब्रह्मा जी की प्रार्थना सुनकर और प्रभु श्री रामचन्द्र जी के वचनों को याद करके शिव जी ने प्रसन्नतापूर्वक कहा, 'ऐसा ही हो।'

तब देवताओं ने नगाड़े बजाए और फूलों की वर्षा करके 'जय हो', देवताओं के स्वामी जय हो' ऐसा कहने लगे।

इसके पश्चात शिव जी ने पार्वती जी के साथ विवाह किया, यह सर्व जग विदित है। समय आने पर कार्तिकेय जी का जन्म हुआ, जिन्होंने तारकासुर को मार सभी को अभय किया।

**हर गिरिजा बिहार नित नयऊ। एहि बिधि बिपुल काल चलि गयऊ ।।**
**तब जनमेउ षटबदन कुमारा। तारकु असुर समर जेहिं मारा ।।**

कामदेव के त्याग को स्मरण कर शिव भक्त होली महोत्सव बड़े धूम धाम से मनाते हैं।

# गुरु गोविन्द सिंह - हिन्दू धर्म के रक्षक

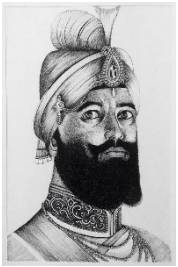

गुरु गोविन्द सिंह जी (१६६६-१७०८) सिख धर्म के दसवें और अंतिम मानव गुरु थे। उन्होंने ही यह घोषणा की थी कि उनके पश्चात 'गुरु ग्रंथ साहिब' ही शाश्वत जीवित गुरु होंगे। ९ जनवरी २०२२ को समस्त विश्व गुरु गोविन्द सिंह जी की जयंती मनाएगा। गुरु गोविन्द सिंह जी ने हिन्दू धर्म की रक्षा हेतु अपना सब कुछ त्याग दिया। स्वयं तो वीरगति को प्राप्त हुए ही, अपने चारों युवा पुत्रों की भी आहुति दे दी। उनकी जयंती दिवस पर हम उनको स्मरण करते हुए उनको नमन करते हैं।

गुरु श्री गोविन्द सिंह जी का जन्म-नाम गोविन्द राय था। उनका जन्म २२ दिसंबर १६६६ को पटना में हुआ था। उनके पिताश्री सिख समुदाय के नवम गुरु आदरणीय श्री गुरु तेग बहादुर जी थे एवं उनकी माताश्री श्रीमती गुजरी देवी थीं। उनके जन्म के समय उनके पिता श्री गुरु तेग बहादुर जी बंगाल और असम में धर्म का प्रचार कर रहे थे। उनके बचपन के प्रथम चार वर्ष पटना में बीते। उसके बाद वह अपने परिवार के साथ वर्ष १६७० में पंजाब में स्थानांतरित हो गए। मार्च १६७२ में गुरुदेव श्री तेग बहादुर जी ने चक्क नानकी नगर की स्थापना की, जिसे आज आनंदपुर साहिब के नाम से जाना जाता है। वह अपने पिताश्री के साथ तब वहां आ गए। यहीं उन्होंने अपनी प्रारंभिक एवं युद्ध कौशल शिक्षा प्राप्त की।

गुरु श्री गोविन्द सिंह जी केवल नौ वर्ष की आयु के ही थे जब उन्होंने अपने पिताश्री गुरु श्री तेग बहादुर जी को कश्मीरी हिंदुओं की रक्षा और बलिदान के लिए प्रेरित किया। गुरु गोविंद सिंह जी ने सभी धर्मों और जाति के लोगों का सम्मान किया और आवश्यकता पड़ने पर सदैव उनकी मदद की। गुरु श्री तेग बहादुर जी ने अपनी मृत्यु से पूर्व श्री गोविन्द राय जी को अपने

उत्तराधिकारी के रूप में घोषित किया, अतः २९ मार्च १६७६ को श्री गोविन्द राय गुरु गोविन्द सिंह के नाम से सिख समुदाय के १०वें सिख गुरु बन गए। यमुना नदी के किनारे एक शिविर में रहते हुए गुरु श्री गोविन्द सिंह जी ने युद्ध कौशल के साथ साथ कई भाषाओं जैसे संस्कृत, फारसी, उर्दू, पंजाबी, ब्रज इत्यादि में विशेषता प्राप्त की।

गुरु श्री गोविन्द सिंह जी के चार पुत्रों को 'साहिबज़ादे' के रूप में जाना जाता है। चारो भाइयों ने क्रूर मुगल आक्रमणकारियों के सामने अपनी सिख पहचान को बनाए रखने के लिए अपनी जान गंवा दी। गुरु श्री गोविन्द सिंह जी के दो पुत्र, श्री अजीत सिंह जी और श्री जुझार सिंह जी, चामकौर में मुग़लों से युद्ध करते हुए वीरगति को प्राप्त हुए। उनके दो छोटे पुत्र, श्री बाबा जोरावर सिंह जी की उस समय आयु ९ वर्ष थी और उनके दूसरे पुत्र श्री बाबा फतेह सिंह जी की आयु मात्र ६ वर्ष थी।

युद्ध चलते गुरु श्री गोविन्द सिंह जी का परिवार बिखर गया। उन्हें आनंदपुर छोड़ना पड़ा। दोनों छोटे बच्चे अपनी दादी गुजरी देवी जी के साथ जंगलों और पर्वतों को पार करके एक नगर में पहुँचे। इस नगर में उन्हें गंगू नामक ब्राह्मण मिला जो बीस वर्षों तक गुरू गोविंद सिंह के पास रसोईये का काम करता था। उसने उन्हें अपने घर आतिथ्य स्वीकार करने का आग्रह किया। पुराना सेवक होने के नाते दादी जी दोनों नन्हें बालकों के साथ गंगू ब्राह्मण के घर चलने को तैयार हो गईं। दादी जी के सामान में कुछ सोने की मुहरें थी जिसे देखकर गंगू लोभवश अपना ईमान बेच बैठा। उसने रात्रि को मुहरें चुरा लीं। परन्तु लालच बड़ी बुरी बला है, इसका कभी अंत नहीं होता, अपितु वह तो बढ़ती ही रहती है। गंगू ब्राह्मण का लालच और अधिक भड़क उठा। वह ईनाम पाने के लालच में मुरिंज थाना पहुँचा और वहाँ कोतवाल को बता दिया कि गुरू गोविंद सिंह के दो पुत्र एवं गुरु जी की माता उसके घर में छिपी हैं।

कोतवाल ने ब्राह्मण गंगू के साथ सिपाहियों को भेजा तथा दोनों बालकों सहित दादी जी को बंदी बना लिया। एक रात उन्हें मुरिंडा की जेल में रखकर दूसरे

दिन सरहिंद के नवाब के पास ले जाया गया। इस बीच दादी जी दोनों बच्चों को उनके दादा गुरू तेग बहादुर एवं पिता गुरु गोविंद सिंह की वीरतापूर्ण कथाएँ सुनाती रहीं।

सरहिंद पहुँचने पर उन्हें किले के एक हवादार बुर्ज में भूखा प्यासा रखा गया। दादी जी उन्हें रात भर वीरता एवं अपने धर्म में अडिग रहने के लिए प्रेरित करती रहीं। वे जानती थीं कि मुगल सर्व प्रथम बच्चों से धर्म परिवर्तन करने के लिए कहेंगे। दोनों बालकों ने अपनी दादी जी को भरोसा दिलाया कि वे अपने पिता एवं कुल की शान पर दाग नहीं लगने देंगे, तथा अपने धर्म में अडिग रहेंगे।

सुबह सैनिक बच्चों को लेने पहुँच गये। दोनों बालकों ने दादी के चरण स्पर्श किये एवं सफलता का आशीर्वाद लेकर चले गए। दोनों बालक नवाब वजीर खान के सामने पहुँचे तथा सिंह की तरह गर्जना करते बोले, 'वाहे गुरु जी का खालसा, वाहे गुरू जी की फतेह।'

चारों ओर से शत्रुओं से घिरे होने पर भी इन नन्हें शेरों की निर्भीकता को देखकर सभी दरबारी दाँतो तले उँगली दबाने लगे। शरीर पर केसरी वस्त्र एवं पगड़ी तथा कृपाण धारण किए इन नन्हें योद्धाओं को देखकर एक बार तो नवाब का भी हृदय पिघल गया।

उसने बच्चों से कहा, '"इन्शाह अल्लाह, तुम बड़े सुन्दर दिखाई दे रहे हो। तुम्हें सज़ा देने की इच्छा नहीं होती। बच्चों, हम तुम्हें नवाबों के बच्चों की तरह रखना चाहते हैं। एक छोटी सी शर्त है कि तुम अपना धर्म छोड़कर मुसलमान बन जाओ।"

नवाब ने लालच एवं प्रलोभन देकर अपना पहला पाँसा फैंका। वह समझता था कि इन बच्चों को मनाना अधिक कठिन नहीं है, परन्तु वह यह भूल बैठा था कि भले ही वे बालक हैं, परन्तु कोई साधारण नहीं, अपितु गुरू गोविंद

सिंह के सपूत हैं। वह भूल बैठा था कि इनकी रगों में उस वीर महापुरूष का रक्त दौड़ रहा है जिसने अपना समस्त जीवन धर्म की रक्षा में लगा दिया था।

नवाब की बात सुनकर दोनों भाई निर्भीकतापूर्वक बोले, 'हमें अपना धर्म प्राणों से भी प्यारा है। जिस धर्म के लिए हमारे पूर्वजों ने अपने प्राणों की बलि दे दी उसे हम तुम्हारी लालच भरी बातों में आकर छोड़ दें, यह कभी नहीं हो सकता।'

नवाब की पहली चाल बेकार गई। बच्चे नवाब की मीठी बातों एवं लालच में नहीं फँसे। अब उसने दूसरी चाल चली। नवाब ने सोचा, ये दोनों बच्चे ही तो हैं, इन्हें डराया धमकाया जाय तो अपना काम बन सकता है।

उसने बच्चों से कहा, 'तुमने हमारे दरबार का अपमान किया है। हम चाहें तो तुम्हें कड़ी सजा दे सकते हैं, परन्तु तुम्हें एक अवसर फिर से देते हैं। अभी भी समय है यदि जीवन चाहते हो तो मुसलमान बन जाओ वर्ना....'

नवाब अपनी बात पूरी करते, इससे पहले ही ये नन्हें वीर गरज कर बोल उठे, 'नवाब, हम उन गुरू तेगबहादुर जी के पोते हैं जो धर्म की रक्षा के लिए शहीद हो गये। हम उन गुरू गोविंद सिंह जी के पुत्र हैं जिनका नारा है, 'चिड़ियों से मैं बाज लड़ाऊँ, सवा लाख से एक लड़ाऊँ'। जिनका एक एक सिपाही तेरे सवा लाख गुलामों को धूल चटा देता है। जिनका नाम सुनते ही तेरी सल्तनत थर थर काँपने लगती है। तू हमें मृत्यु का भय दिखाता है। हम फिर से कहते हैं कि हमारा धर्म हमें प्राणों से भी प्यारा है। हम प्राण त्याग सकते हैं परन्तु अपना धर्म नहीं त्याग सकते।'

इतने में दीवान सुच्चानंद ने बालकों से पूछा, 'अच्छा, यदि हम तुम्हे छोड़ दें तो तुम क्या करोगे ?'

बालक जोरावर सिंह ने कहा, 'हम सेना इकट्ठी करेंगे और अत्याचारी मुगलों को इस देश से खदेड़ने के लिए युद्ध करेंगे।'

दीवान : "यदि तुम हार गये तो?"

बालक जोरावर सिंह बोले, "हार शब्द हमारे जीवन में नहीं है। हम हारेंगे नहीं, या तो विजयी होंगे या शहीद होंगे।"

बालकों की वीरतापूर्ण बातें सुनकर नवाब आग बबूला हो उठा। उसने काज़ी से कहा, 'इन बच्चों ने हमारे दरबार का अपमान किया है तथा भविष्य में मुगल शासन के विरूद्ध विद्रोह की घोषणा की है। अतः इनके लिए क्या दण्ड निश्चित किया जाये?'

काज़ी बोला, 'ये बालक मुगल शासन के दुश्मन हैं और इस्लाम को स्वीकार करने को भी तैयार नहीं हैं। अतः इन्हें जीवित दीवार में चुनवा दिया जाये।"

शैतान नवाब तथा काज़ी के क्रूर फैसले के बाद दोनों बालकों को उनकी दादी के पास भेज दिया गया। बालकों ने उत्साहपूर्वक दादी को पूरी घटना सुनाई। बालकों की वीरता को देखकर दादी गदगद हो उठीं और उन्हें हृदय से लगाकर बोलीं, 'मेरे बच्चो, तुमने अपने पिता की लाज रख ली।'

दूसरे दिन दोनों वीर बालकों को दिल्ली के सरकारी ज़ल्लाद शिशाल बेग और विशाल बेग को सुपुर्द कर दिया गया। बालकों को निश्चित स्थान पर ले जाकर उनके चारों ओर दीवार बनानी प्रारम्भ कर दी। धीरे धीरे दीवार उनके कानों तक ऊँची उठ गयी। इतने में बड़े भाई जोरावर सिंह ने अंतिम बार अपने छोटे भाई फतेह सिंह की ओर देखा और उनकी आँखों से आँसू छलक उठे।

बालक जोरावर सिंह की इस अवस्था को देखकर वहाँ खड़ा काज़ी बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने समझा कि ये बच्चे मृत्यु को सामने देखकर डर गये हैं। उसने

अच्छा मौका देखकर बालक जोरावर सिंह से कहा, 'बच्चो, अभी भी समय है। यदि तुम मुसलमान बन जाओ तो तुम्हारी सजा माफ कर दी जाएगी।'

बालक जोरावर सिंह ने गरजकर कहा, 'मूर्ख काज़ी, मैं मौत से नहीं डर रहा हूँ। मेरा भाई मेरे बाद इस संसार में आया परन्तु मुझसे पहले धर्म के लिए शहीद हो रहा है। मुझे बड़ा भाई होने पर भी यह सौभाग्य नहीं मिला, इसलिए मुझे रोना आता है।'

सात वर्ष के इस नन्हें से बालक के मुख से ऐसी बात सुनकर सभी दंग रह गये। थोड़ी देर में दीवार पूरी हुई और वे दोनों नन्हें धर्मवीर उसमें समा गये।

कुछ समय पश्चात दीवार को गिरा दिया गया। दोनों बालक बेहोश पड़े थे, परन्तु अत्याचारियों ने उसी स्थिति में उनकी हत्या कर दी।

गुरु गोविन्द सिंह जी के नेतृत्व में सिख समुदाय ने बहुत सारे नए इतिहास लिखे। उन्होंने 'खालसा' की स्थापना सन १६९९ में बैसाखी के दिन विधिवत रूप से प्रारम्भ की। खालसा शब्द से उन्होंने चारदिक्ला की भावना दी, जिसका अर्थ था सभी बाधाओं के होने पर भी गुरु और ईश्वर में अटूट विश्वास, आध्यात्मिकता और आशावाद की ओर गमन। 'खालसा' अर्थात संप्रभु या स्वतंत्र, अनुयायियों को यह सिखाने के लिए गठित किया गया था कि कोई भी अनुष्ठान या अंधविश्वास सर्वशक्तिमान से ऊपर नहीं है।

उनके जीवन के समय की एक घटना अत्यंत प्रसिद्ध है। सिख समुदाय की एक बैठक में उन्होंने सभी के सामने प्रश्न पूछा कि धर्म के लिए कौन अपने सिर का बलिदान करने के लिए तत्पर है। तब एक स्वयंसेवक इस पर सहमत हो गए। गुरु श्री गोविन्द सिंह जी उन्हें तब अपने तम्बू में ले गए और कुछ समय बाद खून से सनी तलवार लेकर वापस लौटे। गुरु देव ने फिर उस भीड़ के लोगों से वही प्रश्न दोबारा पूछा। इस बार एक अन्य व्यक्ति सहमत हो गए।

गुरुदेव उन्हें भी लेकर तम्बू में गए और जब बाहर आए तो खून से सनी हुई तलवार उनके हाथ में थी।

यह घटना पांच बार दोहराई गई। इस प्रकार पांच स्वयं-सेवक तम्बू के अंदर गए। थोड़ी देर बाद श्री गुरुदेव इन पाँचों जीवित स्वयं-सेवकों के साथ बाहर आए, और उन्हें अपना सबसे प्रिय 'पंज प्यारे' नाम दिया।

इस घटना के बाद गुरु श्री गोविन्द सिंह जी ने एक लोहे का कटोरा लिया और उसे पानी से भर दिया। तद्पश्चात उसमें चीनी मिलाई। चीनी को जल में अपनी दुधारी तलवार से मिलाया और इस मिश्रण को नाम दिया 'अमृत'। इस मिश्रण 'अमृत' को सभी में बांटा गया. जिसका उद्देश्य था सभी समाज को एकत्रित करना। उन्होंने खालसा शब्द के पाँच महत्व भी समझाए और युद्ध की स्थिति देखते हुए सभी को केश, कंघी, कड़ा, किरपान और कूट धारण करने की सलाह दी।

गुरु श्री गोविंद सिंह जी ने हिन्दू धर्म की रक्षा करते हुए अन्यायी मुग़लों से चौदह युद्ध लड़े। उनकी धर्म निरपेक्षता इतनी महान थी कि उन्होंने युद्ध मुसलमानों से अवश्य लड़े, परन्तु उनके पूजा स्थल को कभी कोई हानि नहीं पहुंचाई। जिन युद्धों में गुरु श्री गोविन्द जी ने भाग लिया वह हैं, भंगाणी युद्ध (१६८८), बदायूं युद्ध (१६९१), गुलर युद्ध (१६९६), आनंदपुर का प्रथम युद्ध (१७००), अनंतपुर साहिब युद्ध (१७०१), निर्मोहगढ़ युद्ध (१७०२), बसोली युद्ध (१७०२), आनंदपुर का द्वितीय युद्ध (१७०४), सरसा युद्ध (१७०४), चमकोर युद्ध (१७०४) एवं  मुक्तसर युद्ध (१७०५), आदि।

हुज़ूर साहब में जब औरंगज़ेब की मृत्यु हो गई तो उसका पुत्र बहादुर शाह भारत का अगला सम्राट बना। सम्राट बहादुर शाह ने उनसे मित्रता कर यह वचन दिया की हिन्दुओं को अब नहीं सताया जाएगा, अतः बड़ा दिल दिखाते हुए उन्होंने बहादुरशाह से मित्रता कर ली। बहादुर शाह और गुरु श्री गोविन्द सिंह जी की मित्रता से आहत सरहद के नवाब वाजिद खान के अपने दो

पठान सैनिकों को श्री गुरु गोविन्द सिंह जी को पकड़ने के लिए भेजा। इन दोनों ने धोखे से गुरु श्री गोविन्द सिंह जी को पकड़ उनकी हत्या कर दी। गुरु श्री गोविन्द सिंह जी ने ७ अक्टूबर १७०८ को महाराष्ट्र के नांदेड़ साहिब में अंतिम सांस ली। महाराजा रणजीत सिंह ने गुरु की हत्या के स्थान को याद करने के लिए नांदेड़ में जहाँ गुरु गोविंद सिंह का अंतिम संस्कार किया गया था, वहां तख्त श्री हुज़ूर साहिब का निर्माण किया। गुरु गोविंद सिंह की आयु उस समय केवल ४२ वर्ष की थी। गुरु गोविंद सिंह के दो हत्यारों में से एक को उनके ही खंजर ने मार डाला था, और दूसरा सिख समूह द्वारा मारा गया।

जैसा ऊपर वर्णित है गुरु श्री गोविन्द सिंह जी ने गुरु ग्रंथ साहिब को जीवित गुरु की मान्यता दी। 'ग्रंथ ग्रन्थ साहिब' का पहला आधिकारिक संस्करण 'आदि ग्रंथ' नाम से जाना जाता है जिसे पांचवें सिख गुरु, गुरु श्री अर्जन देव जी द्वारा संकलित किया गया था। इस 'आदि ग्रन्थ' में पहले चार गुरु एवं अन्य हिन्दू संतों के भजन शामिल थे। इस 'आदि ग्रंथ' को अंततः गुरु श्री गोविन्द सिंह जी द्वारा 'गुरु ग्रंथ साहिब' में विस्तारित किया गया। सन १७०६ में 'श्री गुरु ग्रन्थ साहिब' में गुरु श्री गोविन्द सिंह ने गुरुदेव श्री नानक देव जी के 'आदि ग्रंथ' में कुछ श्लोकों के अतिरिक्त गुरु श्री तेग बहादुर जी के सभी ११५ भजन, सभी अन्य गुरुओं, गुरु अर्जन देव, गुरु रामदास, गुरु अंगद देव, गुरु अमरदास, गुरु तेगबहादुर जी एवं अन्य भारतीय हिन्दू सनातन संतों की परंपराओं और शिक्षाओं के साथ साथ स्वामी रामानंद जी, संत रविदास (रैदास) जी, संत कबीर जी एवं अन्य दो मुस्लिम सूफी फकीरों, शेख फरीद और भगत भीकन, की वाणीओं को भी सम्मिलित किया और ग्रन्थ को 'शाश्वत जीवित गुरु' घोषित किया था। इस ग्रन्थ में ६,५०० से भी अधिक काव्य श्लोक शामिल हैं।

भारत माँ के इन महान सपूत गुरु श्री गोविन्द सिंह जी को उनकी जयन्ती पर हम कोटि कोटि प्रणाम करते हैं।

# श्रीमद्भागवद्गीता - स्वामी श्री रामसुख दास जी के मुख से

**('श्रीमद्भगवद्गीता: साधक संजीवनी' से उद्धृत)**

**पिछले अंक वर्ष २०२१, (अक्टूबर – दिसंबर) से आगे**

पिछले अंक में भारत माँ के महान सपूत स्वामी श्री राम सुखदास जी का संक्षिप्त जीवन परिचय दिया गया था। जैसा आप जानते ही हैं कि गीता प्रेस गोरखपुर द्वारा संचालित साहित्य का आप वर्षो तक संचालन करते रहे। उनकी श्री गीता पर व्याख्या में लिखी विविध पुस्तकों में से कुछ हैं, "गीता-दर्पण", "गीता-माधुर्य", "साधन सुधा सिन्धु," "श्रीमद्भागवद्गीता - साधक संजीवनी" इत्यादि इत्यादि।

उनके अनुसार भगवत्प्राप्ति के लिये न तो कहीं जाने की आवश्यकता है और न वेष बदल कर साधू बनाना आवश्यक है। जिस परमात्मा से सम्पूर्ण प्राणियों की प्रवृत्ति (उत्पत्ति) होती है, और जिससे यह सम्पूर्ण संसार व्याप्त है, उस परमात्मा का अपने कर्म के द्वारा पूजन करके मनुष्य सिद्धि को प्राप्त हो जाता है। प्रभु का आश्रय लेने वाला भक्त सदा सब कर्म करता हुआ भी प्रभु की कृपा से शाश्वत अविनाशी पद को प्राप्त हो जाता है। जब परमात्मा की प्राप्ति की उत्कट अभिलाषा जाग्रत हो जाय, तभी परमात्मा का अनुभव होने लगता है। 'श्रीमद्भागवद्गीता - साधक संजीवनी' से उद्धृत यहां क्रमशः श्री गीता जी की पूज्यनीय श्री स्वामी जी के मुख से निकली व्याख्या को प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है।

**श्रीमद्भागवद्गीता प्रथम अध्याय (क्रमशः)**

**सञ्जय उवाच**
**दृष्टवा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा ।**
**आचार्यमुपसंगम्य राजा वचनमब्रवीत् ।। २ ।।**

संजय बोले, 'उस समय वज्रव्यूह में खड़ी हुई पाण्डव सेना को देखकर राजा दुर्योधन, द्रोणाचार्य के पास जाकर यह वचन बोला।'

**'तदा'** जिस समय दोनों सेनाएँ युद्ध के लिए खड़ी हुई थीं, उस समय की चर्चा संजय यहाँ 'तदा' पद से कहते हैं। कारण कि धृतराष्ट्र का प्रश्न 'युद्ध की इच्छा वाले मेरे और पांडु के पुत्रों ने क्या किया, इस विषय को सुनने के लिए ही है।

**'तु'** धृतराष्ट्र ने अपने और पांडु के पुत्रों के विषय में पूछा है। अतः संजय भी पहले धृतराष्ट्र के पुत्रों की बात बताने के लिए यहाँ 'तु' पद का प्रयोग करते हैं।

**'दृष्टवा पाण्डवानीकं व्यूढम्'** पाण्डवों की वज्रव्यूह से खड़ी सेना को देखने का तात्पर्य है कि पाण्डवों की सेना बड़ी ही सुचारू रूप से और एक ही भाव से खड़ी थी, अर्थात उनके सैनिकों में दो भाव नहीं थे, कोई मतभेद नहीं था। उनके पक्ष में धर्म और भगवान श्रीकृष्ण खड़े थे। जिसके पक्ष में धर्म और भगवान होते हैं, उनका दूसरों पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। इसलिए संख्या में कम होने पर भी पाण्डवों की सेना में ओज था और उनका दूसरों पर बड़ा प्रभाव पड़ रहा था। दुर्योधन पर भी इसका बड़ा प्रभाव पड़ रहा था, अतः वह गुरु द्रोणाचार्य के पास जाकर नीतियुक्त गंभीर वचन बोलने लगा।

**'राजा दुर्योधनः'**, दुर्योधन को राजा कहने का तात्पर्य है कि धृतराष्ट्र का सबसे अधिक अपनापन दुर्योधन में ही था। परंपरा की दृष्टि से भी युवराज दुर्योधन ही था। राज्य के सब कार्यों की देखभाल दुर्योधन ही करता था। धृतराष्ट्र तो

नाममात्र के राजा थे। युद्ध होने में भी मुख्य हेतु दुर्योधन ही था। इन सभी कारणों से संजय ने दुर्योधन के लिए 'राजा' शब्द का प्रयोग किया है।

**'आचार्यमुपसंगम्य',** द्रोणाचार्य के पास दुर्योधन का जाने का मुख्यतः कारण अपना स्वार्थ सिद्ध करना, द्रोणाचार्य के भीतर पाण्डवों के प्रति द्वेष पैदा करना एवं उनको अपने पक्ष में विशेष रूप से मनाना था (क्योंकि वह जानता था कि द्रोणाचार्य का हृदय तो पांडवों की ओर ही है)। व्यवहार में गुरु के नाते आदर देने के लिए भी द्रोणाचार्य के पास जाना उचित ही था। मुख्य व्यक्ति का सेना में यथा स्थान खड़े रहना बहुत आवश्यक होता है अन्यथा व्यवस्था बिगड़ जाती है। यहाँ शंका हो सकती है कि दुर्योधन को तो पितामह भीष्म के पास जाना चाहिए था, जो कि सेनापति थे, पर दुर्योधन गुरु द्रोणाचार्य के पास ही क्यों गया? इसका समाधान यह है कि द्रोण और भीष्म, दोनों ही उभय-पक्षपाती थे, अर्थात वे कौरव और पांडव, दोनों का ही पक्ष रखते थे। उन दोनों में भी द्रोणाचार्य को ज्यादा मनाना था क्योंकि द्रोणाचार्य के साथ दुर्योधन का गुरु के नाते तो स्नेह था, पर कुटुम्ब के नाते स्नेह नहीं था। अर्जुन पर द्रोणाचार्य की विशेष कृपा थी। अतः उनको मनाने के लिए दुर्योधन का उनके पास जाना ही उचित था। व्यवहार में भी यह देखा जाता है कि जिसके साथ स्नेह नहीं है, उससे अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए मनुष्य उसको अधिक आदर देकर मनाता है। दुर्योधन के मन में यह विश्वास था कि भीष्म जी तो हमारे दादा जी ही हैं, अतः उनके पास न जाऊँ तो भी कोई बात नहीं है। न जाने से अगर वे क्रोधित भी हो जायँगे तो मैं किसी तरह से उनको मना लूँगा। कारण कि पितामह भीष्म के साथ दुर्योधन का कौटुम्बिक सम्बन्ध और स्नेह था। इसलिए भीष्म जी ने दुर्योधन को प्रसन्न करने के लिए तीव्रता से शंख बजाया है।

**'वचनमब्रवीत्'**, यहाँ 'अब्रवीत्' कहना ही पर्याप्त था क्योंकि 'अब्रवीत्' क्रिया के अंतर्गत ही 'वचनम्' आ जाता है, अर्थात दुर्योधन बोलेगा, तो वचन ही बोलेगा। इसलिए यहाँ 'वचनम्' शब्द की आवश्यकता नहीं थी। फिर भी 'वचनम्' शब्द देने का तात्पर्य है कि दुर्योधन नीतियुक्त गंभीर वचन बोलता है, जिससे द्रोणाचार्य के मन में पांडवों के प्रति द्वेष पैदा हो जाय और वे हमारे

ही पक्ष में रहते हुए ठीक तरह से युद्ध करें। जिससे हमारी विजय हो जाए, हमारा स्वार्थ सिद्ध हो जाए।

**पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम् ।**
**व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ॥३॥**

(दुर्योधन गुरु द्रोणाचार्य के पास पहुँच बोले) हे आचार्य, आपके बुद्धिमान् शिष्य द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न द्वारा व्यूहाकार खड़ी की हुई पाण्डुपुत्रों की इस बड़ी भारी सेना को देखिए।

**'आचार्य'** द्रोण के लिए 'आचार्य' सम्बोधन देने में दुर्योधन का यह भाव प्रदर्शित होता है कि आप सब, कौरवों एवं पांडवों, के आचार्य हैं। शस्त्रविद्या सिखाने वाले गुरु हैं। इसलिए आपके मन में किसी का पक्ष या आग्रह नहीं होना चाहिए।

**'तव शिष्येण धीमता'** इन पदों का प्रयोग करने में दुर्योधन का भाव यह है कि आप इतने सरल हैं कि अपने मारने के लिए पैदा होने वाले द्रुपद पुत्र धृष्टद्युम्न को भी आपने अस्त्र-शस्त्र शिक्षा दी। आपका शिष्य धृष्टद्युम्न इतना बुद्धिमान है कि उसने आपको मारने के लिए ही आपसे अस्त्र-शस्त्र शिक्षा ली।

**'द्रुपदपुत्रेण'** यह पद कहने का आशय है कि आपको मारने के उद्देश्य को लेकर ही द्रुपद ने याज और उपयाज नामक ब्राह्मणों से यज्ञ कराया, जिससे धृष्टद्युम्न पैदा हुआ। वही द्रुपद पुत्र धृष्टद्युम्न आपके सामने (प्रतिपक्ष में) सेनापति के रूप में खड़ा है। यद्यपि दुर्योधन यहां द्रुपदपुत्र के स्थान पर धृष्टद्युम्न भी कह सकता था, तथापि द्रोणाचार्य के साथ द्रुपद जो वैर रखते थे, उस वैर भाव को याद दिलाने के लिए दुर्योधन यहां द्रुपदपुत्रेण शब्द का प्रयोग कर रहा है ताकि वह इस बात पर ज़ोर दे सके कि यह अवसर वैर निकालने के लिए अति उपयुक्त है।

**'पाण्डुपुत्राणां व्यूढां महतीं चमूम् पश्य'** द्रुपदपुत्र के द्वारा पांडवों की इस व्यूहाकार खड़ी हुई बड़ी भारी सेना देखिए। तात्पर्य है कि जिन पांडवों पर आप स्नेह रखते हैं, उन्हीं पांडवों ने आपके प्रतिपक्ष में, विशेषकर आपको मारने के लिए, द्रुपदपुत्र को सेनापति बनाकर व्यूह रचना का अधिकार दिया है। अगर पांडवों को आपसे लेश मात्र भी स्नेह होता तो कम से कम आपको मारने वाले को तो अपनी सेना का मुख्य सेनापति नहीं बनाते एवं इतना अधिकार नहीं देते। परन्तु सब कुछ जानते हुए भी उन्होंने उसी को सेनापति बनाया है।

कौरवों की अपेक्षा पांडवों की सेना संख्या में कम थी। कौरवों की सेना ११ अक्षोहिणी थी और पांडवों की सेना ७ अक्षोहिणी थी, फिर भी दुर्योधन पांडवों की सेना को बड़ा भारी बता रहा है। (१ अक्षोहिणी सेना में २१,८७० रथ, २१,८७० हाथी, ६५,६१० घोड़े और १,०९,३५० पैदल सैनिक होते हैं।)

दुर्योधन द्वारा पांडवों की सेना को बड़ा भारी बताने में दो भाव मालुम होते हैं।

(१) पांडवों की सेना ऐसे ढंग से व्यूहाकार खड़ी हुई थी जिससे दुर्योधन को थोड़ी सेना भी बहुत बड़ी दिख रही थी।

(२) पांडव सेना में सब योद्धा एक मत के थे। इस एकता के कारण पांडवों की थोड़ी सेना भी बल एवं उत्साह में बड़ी दिखाई दे रही थी। ऐसी सेना की चर्चा कर दुर्योधन द्रोणाचार्य से यह कहना चाहता है कि युद्ध करते समय आप इस सेना को सामान्य और छोटी न समझें। आप विशेष बल से सावधानी से युद्ध करें। पांडवों का सेनापति द्रुपदपुत्र है तो आपका शिष्य ही, अतः उस पर विजय पाना आपके लिए कोई कठिन नहीं है।

**'पश्यैतां'** आप शीघ्र निर्णय लीजिए कि हम इस सेना पर किस प्रकार विजय पा सकते हैं।

**क्रमशः - अगले अंक में**

# पढ़ो, समझो और करो - नैतिक कहानी

## सोने की गिन्नियों का बंटवारा

दो मित्र सोहन और मोहन अपने गाँव के मंदिर की सीढ़ियों पर बैठकर यूँ ही इधर उधर की चर्चा कर रहे थे, तभी एक अन्य तीसरे व्यक्ति गणेश उनके पास आए, और उनकी चर्चा में सम्मिलित हो गए। चर्चा में कब दिन ढल गया, उन्हें पता ही नहीं चला। शाम को तीनों को भूख लग आई। सोहन और मोहन के पास क्रमशः ३ और ५ रोटियाँ थीं, लेकिन गणेश के पास खाने के लिए कुछ भी नहीं था। सोहन और मोहन ने तय किया कि वे अपने पास की रोटियों को आपस में बांटकर खा लेंगें। गणेश उनकी बात सुनकर प्रसन्न हो गए। लेकिन समस्या यह खड़ी हो गई है कि कुल ८ रोटियों को तीनों में बराबर बराबर कैसे बांटा जाए?

सोहन इस समस्या का समाधान निकालते हुए बोले, "हमारे पास कुल ८ रोटियाँ हैं। हम इन सभी रोटियों के ३-३ टुकड़े करते हैं। इस तरह हमारे पास कुल २४ टुकड़े हो जायेंगे। उनमें से ८-८ टुकड़े हम तीनों खा लेंगें"। मोहन और गणेश को यह बात बहुत अच्छी लगी, और उन्होंने वैसा ही किया।

रोटियाँ खाने के बाद वे तीनों उसी मंदिर की सीढ़ियों पर सो गए क्योंकि रात गहरी हो चुकी थी। जब सुबह वह उठे, तो गणेश ने सोहन और मोहन से विदा ली। विदाई लेते समय वह बोले, "मित्रो, कल तुम दोनों ने अपनी रोटियों में से तोड़कर मुझे जो टुकड़े दिए, उसके कारण मेरी भूख मिट पाई। इसके लिए मैं तुम दोनों का बहुत आभारी हूँ। यह आभार तो मैं कभी चुका नहीं पाऊंगा, लेकिन फिर भी उपहार स्वरुप मैं तुम दोनों को सोने की ये ८ गिन्नियाँ देना

चाहता हूँ"। यह कहकर गणेश ने सोने की ८ गिन्नियाँ उन्हें दे दीं, और विदा लेकर चले गए।

सोने की गिन्नियाँ पाकर सोहन और मोहन बहुत प्रसन्न हुए। उन्हें हाथ में लेकर सोहन मोहन से बोले, "आओ मित्र, ये ८ गिन्नियाँ आधी-आधी बाँट लें। तुम ४ गिन्नी लो, और ४ गिन्नी मैं लेता हूँ।" लेकिन मोहन ने ऐसा करने से मना कर दिया। वह बोले, "ऐसे कैसे? तुम्हारी ३ रोटियाँ थीं और मेरी ५। मेरी रोटियाँ अधिक थीं, इसलिए मुझे अधिक गिन्नियाँ मिलनी चाहिए। तुम्हारी ३ रोटियां थीं, अतः तुम ३ गिन्नी ले लो और मुझे ५ गिन्नियां दे दो।

अब इस बात पर दोनों में बहस छिड़ गई। दोनों ने ऐसा निश्चय किया कि चलो मंदिर के पुजारी के पास चलते हैं, वह जो भी निर्णय करेंगे, हम स्वीकार करेंगे।

दोनों सोहन मोहन मंदिर के पुजारी के पास पहुंचे और उन्हें पूरी कहानी बताई।

यूँ तो पुजारी जी को मोहन की बात ठीक लगी, लेकिन वे निर्णय में कोई त्रुटि नहीं करना चाहते थे, इसलिए बोले, "अभी तुम दोनों ये गिन्नियाँ मेरे पास छोड़ जाओ। मैं इस पर अच्छी तरह सोच विचार कर लेता हूँ। कल सुबह तुम लोग आना। मैं तुम्हें अपना निर्णय बता दूंगा।'

सोहन और मोहन सोने की गिन्नियाँ पुजारी जी के पास छोड़कर चले गए। देर रात तक पुजारी जी गिन्नियों के बंटवारे के बारे में सोचते रहे, लेकिन किसी उचित निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पाए। भगवान् से विनती कि की वह ही इस समस्या का समाधान निकाल उनका उचित मार्ग दर्शन करें। यही सोचते सोचते उन्हें नींद आ गई। तब भगवान् स्वयं उनके स्वप्न में आए, और बोले, "सोहन को १ गिन्नी मिलनी चाहिए और मोहन को ७।"

यह सुनकर पुजारी जी हैरान रह गए और पूछ बैठे, "ऐसा क्यों प्रभु?"

तब भगवान जी बोले, "देखो, सोहन के पास ३ रोटियाँ थी, जिसके उसने ९ टुकड़े किये। उन ९ टुकड़ों में से ८ टुकड़े उसने स्वयं खाए और १ टुकड़ा गणेश को दिया था। मोहन के पास ५ रोटियां थीं, जिसके १५ टुकड़े हुए। आठ टुकड़े उसने स्वयं खाए, और ७ गणेश को दिए। अतः सोहन का त्याग केवल एक टुकड़े का था जब की मोहन का त्याग ७ टुकड़ों का। इसलिए सोहन को १ गिन्नी मिलनी चाहिए, और मोहन को ७।"

पुजारी जी भगवान के इस निर्णय पर बहुत प्रसन्न हुए और उन्हें कोटि कोटि धन्यवाद देते हुए बोले, "प्रभु, मैं ऐसे न्याय की बात कभी सोच भी नहीं सकता था"।

अगले दिन जब सोहन और मोहन मंदिर आकर पुजारी जी से मिले, तो पुजारी जी ने उन्हें अपने स्वप्न के बारे में बताते हुए निर्णय सुना दिया, और सोने की गिन्नियाँ बांट दीं।

**शिक्षा**: जीवन में हम जब भी कोई त्याग करते हैं या काम करते हैं, तो अपेक्षा करते हैं कि भगवान इसके बदले हमें बहुत बड़ा फल देंगे। लेकिन जब ऐसा नहीं हो पाता, तो हम भगवान से शिकायत करने लग जाते हैं। हमें लगता है कि इतना कुछ त्याग करने के बाद भी हमें जो प्राप्त हुआ, वह बहुत कम है। भगवान ने हमारे साथ अन्याय किया है। लेकिन वास्तव में, भगवान का न्याय हमारी सोच से परे है। वह केवल हमारे त्याग को नहीं, बल्कि समग्र जीवन का आंकलन कर निर्णय लेते हैं। इसलिए जो भी हमें मिला है, उसमें संतुष्ट रहना चाहिए और भगवान से शिकायतें नहीं करनी चाहिए, क्योंकि भगवान का निर्णय सदा न्याय संगत होता है। हमें जीवन में जो भी मिल रहा होता है, वह हमारे कर्मों के अनुसार ही सही मिलता है। स्मरण रखिए की इस संसार में मुफ्त में कुछ नहीं है। जैसा बीज बोएंगे, वैसा ही काटेंगे।

# बाल खंड

## गुरु महिमा: स्वामी विवेकानंद जी के संस्मरण से

बच्चो हमने पिछले अंक में माँ भारती के महान सपूत स्वामी विवेकानंद जी का संक्षिप्त परिचय आपको दिया था। उन्हीं के संस्मरण से निम्न कथा हम आपको प्रस्तुत करते हैं जिसमें स्वामी जी ने गुरु की महानता, उनके द्वारा सरंक्षण एवं सदैव कुशलता का ध्यान रखे जाने का विवरण दिया है।

आप सब जानते ही हैं कि स्वामी विवेकानंद जी के गुरु स्वयं भगवान् के अवतार परमहंस श्री रामकृष्ण ठाकुर जी महाराज थे। स्वयं श्री ठाकुर जी के मुख से एक बार निकला था, 'जो त्रेता में थे राम, द्वापर में थे कृष्ण, अब वही हैं रामकृष्ण'।

ठाकुर परमहंस रामकृष्ण महाराज जी के समाधिग्रस्थ होने के पश्चात स्वामी विवेकानंद जी ने भारत भ्रमण करते हुए सभी तीर्थों की यात्रा का संकल्प किया। वह अयोध्या में भगवान् श्री राम लला के दर्शन के लिए भी गए। वहां से लौटते समय वह वाराणसी-कोलकता रेलवे लाइन पर एक छोटे से रेलवे स्टेशन पर कोलकता जाने के लिए ट्रेन की प्रतीक्षा में थे। उस समय किसी हिन्दू मुख्य पर्व पड़ने के कारण स्वामी जी ने पिछले दो दिवस से व्रत रख रखा था। अब व्रत तोड़ने का समय तो अवश्य आ गया था, लेकिन स्वामी जी के पास कोई कोई भोजन का प्रबंध नहीं था। दो दिवस से भोजन न करने से स्वामी जी का शरीर अत्यंत दुर्बल हो गया था। गुरुदेव का आदेश था कि भोजन भिक्षा में न लिया जाय, विशेषकर व्रत के बाद। भोजन तभी किया जाय जब आतिथ्य से कोई भोजन दे।

स्वामी जी रेलवे स्टेशन की एक बेंच पर बैठे हुए ट्रेन की प्रतीक्षा कर रहे थे। तभी एक समृद्ध व्यक्ति उसी बेंच पर आकर बैठ गया। कई दिनों की लगातार यात्रा से स्वामी जी के कपडे भी मैले हो गए थे। उन्हें उनको धोने का अवसर ही नहीं मिल पाया था। स्वामी जी के इन धूल भरे वस्त्रों को देखकर वह समृद्ध व्यक्ति नाक भों सिकोड़ बेंच के दूसरी ओर बैठ गया ताकि कोई गंध न आए। फिर अपने थैले से खाना निकालकर खाने लगा। वह तो ठीक था, उसका खाना था, वह खाए अथवा अपने भोजन के साथ कुछ भी करे, लेकिन दुर्भाग्य की बात तो यह थी कि वह चुप नहीं बैठ सकता था। भोजन करते करते स्वामी विवेकानंद जी से बोला, 'वस्त्र तो सन्यासीओं जैसे धारण कर रखे हैं। शक्ल से लग रहा है पता नहीं कितने दिनों से भोजन नहीं मिला। इतना ह्रष्ट पुष्ट शरीर है, कुछ कार्य करो, पैसे कमायो, और अच्छा भोजन करो। मुझे देखो। मेहनत करता हूँ पैसे कमाता हूँ, तब ऐसा स्वादिष्ट भोजन मिलता है। आशा नहीं करो कि मैं तुम्हें भोजन दूंगा। मुझे तो तुम जैसे लोगों से जो जन समाज को साधू होने का ढोंग  रचते हैं, घृणा है।'

स्वामी जी ने उसकी ओर प्रेम भरी दृष्टि से देखा, मुस्कुराए, और फिर अपने चिंतन में लग गए। भूख अवश्य लग रही थी। गुरु का स्मरण किया, 'हे प्रभु, जैसी आपकी इच्छा। जब आप चाहेंगे, तभी भोजन मिलेगा।'

इस रेलवे स्टेशन के पास ही एक छोटा सा गांव था। वहां के 'सीता राम मंदिर' के वृद्ध पुजारी अभी दोपहर का भोजन कर थोड़ा विश्राम के लिए लेटे ही थे कि उन्हें निद्रा आ गई। निद्रा में उन्होंने स्वप्न देखा कि कोई छोटी सी दाढ़ी वाला व्यक्ति जो सन्यासी लग रहा था, उन्हें झकझोड़ कर जगाने का प्रयास कर रहा है, और कह रहा कि रेलवे स्टेशन  की बेंच पर एक भूखा सन्यासी बैठा है, जाओ उसे भोजन दो। हड़बड़ा कर आँख खुल गई। स्वप्न ऐसा लग रहा था जैसे कि कोई सत्य घटना घटित हुई हो। तुरंत अपनी चारपाई से उठे और पत्नी के पास पहुंचे। पत्नी से बोले, 'अरी भाग्यवान, अभी स्वप्न में मुझे ऐसा लगा कि कोई देव मुझ से ऐसा कह रहा कि रेलवे स्टेशन के बेंच पर कोई सन्यासी भूखा बैठा है, मैं जाकर उसे भोजन दे दूँ। ला, कुछ भोजन हो

तो दे। मैं तुरंत रेलवे स्टेशन जाकर देखूं कि कौन सन्यासी है, और उसे भोजन दे दूँ।'

पत्नी को आश्चर्य अवश्य हुआ, लेकिन तुरंत बोलीं, 'आज पर्व के कारण मंदिर में बहुत भोजन का चढ़ावा आया है। मैं तो स्वयं यह सोच रही थी कि हे प्रभु इतने भोजन का क्या होगा? अवश्य ही यह उन्हीं सन्यासी के लिए भोजन आया है। आप ले जाइये।' पत्नी ने तुरंत भोजन की एक पोटली बना दी जिसमें विविध प्रकार के पकवान जो भगवान् के भोग के लिए ग्रामवासीओं ने चढ़ावे में भेजे थे, बाँध दिए।

भोजन लेकर तुरंत ब्राह्मण पुजारी रेलवे स्टेशन पहुंचे। वहां एक बेंच पर उन्होंने एक सन्यासी को बैठे हुए देखा। तुरंत उनके चरण स्पर्श किए और भोजन निकाल उनके सामने रख उनसे भोजन ग्रहण करने की प्रार्थना करने लगे। विभिन्न प्रकार के पकवान थे। स्वामी जी ने गुरुदेव को स्मरण किया। हाथ मुँह धो, गुरुदेव को अर्पण कर भर पेट भोजन किया। भोजन कर वह पुजारी जी से बोले, 'आपको कैसे पता चला कि मैं यहां भूखा बैठा हूँ जो आप भोजन ले तुरंत चले आए?'

पुजारी जी के नेत्रों में जल भर आया। स्वामी जी के चरण पकड़ कर बोले, 'प्रभु, एक दाढ़ी वाले छोटे से कद के सन्यासी ने दोपहर के भोजन के बाद जब मैं चारपाई पर थोड़ा विश्राम करने को लेटा था, मुझे स्वप्न में दर्शन दिए और कहा कि एक सन्यासी रेलवे स्टेशन पर भूखा बैठा है, जा उन्हें भोजन दे आ। मैं तुरंत उनकी आज्ञा का पालन करते हुए आपके पास भोजन लेकर आ गया।'

स्वामी जी के पास एक छोटा सा गुरुदेव ठाकुर जी का चित्र था। उसे निकाल पुजारी जी को दिखा कर बोले, 'क्या वह सन्यासी यह था?'

पुजारी को काटो तो खून नहीं। विस्मय से उस चित्र को देखना लगा और बोला, 'हाँ, प्रभु, वह यही तो थे।'

तब स्वामी जी ने पुजारी जी को बताया कि यह मेरे गुरु हैं।

इस घटना और वार्तालाप को वह समृद्ध व्यक्ति सब देख, सुन रहा था। उसकी भी आंखे खुल  गईं। उसे स्वामी जी की महानता का ज्ञान हो गया। उठकर तुरंत उसने स्वामी जी के चरण छूए, और उनसे क्षमा माँगी।

स्वामी जी तो बस मुस्कुराते रहे। उनके नेत्रों से गुरु प्रेम में जल अवश्य भर आया।

गुरुदेव की कैसी महिमा है। स्वयं भगवान राम को गुरु वशिष्ठ और कृष्ण को गुरु संदीपनी की शरण में जाकर ही ज्ञान मिला था। गुरु ही सरंक्षक हैं। अपने गुरुदेव में श्रद्धा, धैर्य और विश्वास हमें जीवन की समस्त बाधाओं से मुक्ति दिलाकर हमारे ध्येय की और अग्रसित कर सफलता और संतुष्टि प्रदान कर देता है। जय श्री गुरुदेव।

# श्रीमदभगवद-भोग व्यंजन खंड

पिछले अंक में हिंदू धर्म शास्त्रों का विधान, भोजन करने से पहले भोजन को भगवान को अर्पित करें, भोग लगाएं, उसके पश्चात्र ही भोजन ग्रहण करें, इसकी चर्चा की गई थी। शुद्ध और उचित आहार भगवान की उपासना का एक अंग है। भोजन करते समय किसी भी अपवित्र खाद्य पदार्थ का ग्रहण करना निषिद्ध है। यही कारण है कि भोजन करने से पूर्व भगवान को भोग लगाने का विधान है, जिससे कि हम शुद्ध और उचित आहार ग्रहण कर सकें। जिस भोजन को हम अपने हृदय में निषिद्ध मानते हों, स्वतः ही जब उस प्रकार का भोजन आप प्रभु को अर्पित करना चाहेंगे तो आपका मन नहीं मानेगा।

क्या आप जानते हैं कि भगवान् बाल कृष्ण को दूध, दही, मक्खन तो अति प्रिय था ही, उन्हें आटे के लड्डू भी अति प्रिय थे। अगर आपको कभी ब्रज तीर्थ यात्रा का अवसर मिले, तो आप देखेंगे कि वहां के कई मंदिरों में, विशेषकर नंदगांव के कृष्ण मंदिर में आपको आटे के लड्डू का प्रसाद मिलेगा। यह इतना स्वादिष्ट होता है कि आपका इसके खाने से दिल कभी नहीं भरेगा। आज आटे के लड्डू बनाने की विधि के बारे में हम चर्चा करेंगे। आप कृष्ण कन्हैया के अति प्रिय आटे के लड्डू अपने घर में बनाइए, और लड्डू गोपाल को अर्पित कर, उनका भोग लगा, परिवार एवं मित्रों सहित आनंद लीजिए। जय कन्हैया लाल की।

## आटे के लड्डू बनाने की विधि

<u>आवश्यक सामग्री</u>

| | |
|---|---|
| गेहूं का आटा: | ५०० ग्राम |
| गाय का शुद्ध घी: | ३०० ग्राम |
| सूखा नारियल का चूर्ण: | १ छोटा प्याला |

| | |
|---|---|
| इलायची चूर्ण: | १/२ छोटा चम्मच |
| जायफल: | १/२ छोटा चम्मच |
| खाने वाला गोंद: | १/२ छोटा प्याला (१२५ ग्राम) |
| बादाम: | १० (कटे हुए) |
| काजू: | १० (कटे हुए) |

<u>बनाने की विधि</u>

सर्व प्रथम कढ़ाई में गाय का शुद्ध घी डाल कर उसे गर्म होने रखिए। घी के गर्म होने पर उसमें गेहूं का आटा डालिए। मध्यम आंच पर घी में आटे को लगातार कलछी की सहायता से भून लीजिए। जब आटे का रंग हल्का बादामी रंग को होने लगे, और ऐसा प्रतीत हो कि भुना हुआ आटा अब घी छोड़ने लगा है, तब उसमें खाने वाला गोंद डालिए। गोंद डालते ही फूलने लगेगा। उसके फूलने पर उसे ५ से ७ मिनट आटे के साथ अच्छी तरह से भून लीजिए। अब आंच से कढ़ाई उतार लीजिए। इस प्रक्रिया में लगभग ३० से ३५ मिनिट लग सकते हैं।

अब एक दूसरे बर्तन में उपरोक्त मिश्रण को ठंडा होने के लिए निकाल दीजिए। ध्यान रहे कि आटे को गुनगुना गर्म रखना है। पूरा ठंडा नहीं होने देना है।

जब तक आटे का मिश्रण ठंडा होता है तब तक चीनी को बारीक पीस लीजिए। इसमें मिक्सर की सहायता ली जा सकती है, अथवा खरल में पीस लीजिए। काजू और बादाम को भी बारीक टुकड़ों में काट लीजिए।

आटे के हल्का ठंडा होने पर उसमें पीसी हुई चीनी, इलायची चूर्ण, जायफल चूर्ण, काजू, बादाम और सूखा नारियल का चूर्ण डाल दीजिए।

इन सभी चीजों को अच्छे से मिला लीजिए। लड्डू बनाने के लिए मिश्रण तैयार है।

अब इसमें से थोड़ा थोड़ा मिश्रण ले कर गोल लड्डू बना लीजिए। लड्डू आप छोटे या बड़े किसी भी आकार के बना सकते हैं।

आटे के लड्डू बन कर तैयार हैं। आटे के लड्डूओं को कुछ देर बाहर खुली हवा में रहने दीजिए। इससे लड्डू थोड़ा कड़े हो जाएंगे। जब लड्डू कड़े हो जाएं, तो बाल कन्हैया का भोग लगाइए, और फिर आप सभी लोग प्रसाद का आनंद लीजिए।

# होलिका पूजन विधि

'होलिका दहन', हिन्दुओं का एक महत्वपूर्ण पर्व है, जिसमें होली उत्सव के एक दिन पूर्व सन्ध्या को होलिका का सांकेतिक रूप से दहन किया जाता है। 'होलिका दहन' की रात्रि अत्यंत विशेष मानी जाती है। शास्त्रों में वर्णित है कि 'होलिका दहन' के समय की जाने वाली पूजा से घर में धन धान्य के भंडार तो भरते ही हैं, जीवन से समस्त कष्ट भी दूर हो जाते हैं। आईए, श्रुति अनुसार होली उत्सव पर पूजा की विधि का वर्णन करते हैं।

## होलिका पूजन सामग्री

अगर संभव हो सके तो निम्न पूजा सामग्री एकत्रित कर लें।

एक कलश जल, कच्चा सूत, रोली, गुलाल, पुष्प, मिठाइयां और गेंहू अथवा जौ की बालियां।

## पूजा विधि

सुबह के समय स्नानादि कार्यों से निवृत्त होकर 'होलिका दहन' के लिए घर के आँगन में अथवा किसी भी सुरक्षित स्थान पर (अग्नि के कारण सुरक्षित स्थान हो) कुछ सूखी लकड़ी अथवा गाय के गोबर के उपले रखें। इसे हम 'होलिका' का नाम देते हैं। अब होलिका के पास पूर्व या उत्तर दिशा में मुख कर सपरिवार एवं मित्रों के साथ बैठें। 'होलिका' में थोड़ा सा गाय का घी डालें, और उसे माचिस से प्रज्वल्लित करें, और पूजन प्रारम्भ करें।

सदैव स्मरण रखें कि प्रथम पूज्य श्री गणेश जी की स्तुति सर्व प्रथम करें।

**ॐ गजाननं भूंतागणाधि सेवितम्, कपित्थजम्बू फलचारु भक्षणम् |**
**उमासुतम् शोक विनाश कारकम्, नमामि विघ्नेश्वर पादपंकजम् ||**

**गाइये गणपति जगवंदन | शंकर सुवन भवानी के नंदन ॥**
**सिद्धी सदन गजवदन विनायक | कृपा सिंधु सुंदर सब लायक़ ॥**
**मोदक प्रिय मुद मंगल दाता | विद्या बारिधि बुद्धि विधाता ॥**
**मांगत तुलसीदास कर जोरे | बसहिं रामसिय मानस मोरे ॥**

इसके पश्चात गौरी पूजन करें ।

**जय जय गिरिबरराज किसोरी । जय महेस मुख चंद चकोरी ।।**
**जय गज बदन षड़ानन माता । जगत जननि दामिनि दुति गाता ।।**
**नहिं तव आदि मध्य अवसाना । अमित प्रभाउ बेदु नहिं जाना ।।**
**भव भव बिभव पराभव कारिनि । बिस्व बिमोहनि स्वबस बिहारिनि ।।**

**पति-देवता सुतीय महुँ मातु प्रथम तव रेख ।**
**महिमा अमित न सकहिं कहि सहस सारदा सेष ।।**

**सेवत तोहि सुलभ फल चारी । बरदायनी पुरारि पिआरी ।।**
**देबि पूजि पद कमल तुम्हारे । सुर नर मुनि सब होहिं सुखारे ।।**
**मोर मनोरथु जानहु नीकें । बसहु सदा उर पुर सबही कें ।।**
**कीन्हेउँ प्रगट न कारन तेहीं । अस कहि चरन गहे बैदेहीं ।।**
**बिनय प्रेम बस भई भवानी । खसी माल मूरति मुसुकानी ।।**
**सादर सियँ प्रसादु सिर धरेऊ। बोली गौरि हरषु हियँ भरेऊ ।।**
**सुनु सिय सत्य असीस हमारी । पूजिहि मन कामना तुम्हारी ।।**
**नारद बचन सदा सुचि साचा । सो बरु मिलिहि जाहिं मनु राचा ।।**

**मनु जाहिं राचेउ मिलिहि सो बरु सहज सुंदर साँवरो ।**
**करुना निधान सुजान सीलु सनेहु जानत रावरो ।।**
**एहि भाँति गौरि असीस सुनि सिय सहित हियँ हरषीं अली ।**
**तुलसी भवानिहि पूजि पुनि पुनि मुदित मन मंदिर चली ।।**

**जानि गौरि अनुकूल सिय हिय हरषु न जाइ कहि ।**
**मंजुल मंगल मूल बाम अंग फरकन लगे ।।**

अब होलिका, भक्त प्रह्लाद और भगवान नृसिंह को नमन करते हुए निम्न मन्त्र पढ़ें ।

**ॐ होलिकायै नमः । ॐ प्रहलादाय नमः । ॐ नृसिंहाय नमः ।**

इसके पश्चात श्री हनुमान जी की स्तुति करें। हनुमान चालीसा का पाठ पढ़ें।

**अतुलितबलधामं हेमशैलाभदेहं ।**
**दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम् ॥**
**सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं ।**
**रघुपतिप्रियभक्तं वातजातं नमामि ॥**

**श्री गुरु चरन सरोज रज, निज मनु मुकुरु सुधारि ।**
**बरनऊं रघुबर बिमल जसु, जो दायकु फल चारि ।।**
**बुद्धिहीन तनु जानिके, सुमिरौं पवन कुमार ।**
**बल बुद्धि बिद्या देहु मोहिं, हरहु कलेस बिकार ।।**

**जय हनुमान ज्ञान गुन सागर। जय कपीस तिहुं लोक उजागर ।।**
**रामदूत अतुलित बल धामा। अंजनि पुत्र पवनसुत नामा ।।**
**महाबीर बिक्रम बजरंगी। कुमति निवार सुमति के संगी ।।**
**कंचन बरन बिराज सुबेसा। कानन कुंडल कुंचित केसा ।।**

हाथ बज्र औ ध्वजा बिराजै। कांधे मूंज जनेऊ साजै ।।
संकर सुवन केसरी नंदन। तेज प्रताप महा जग बन्दन ।।
विद्यावान गुनी अति चातुर। राम काज करिबे को आतुर ।।
प्रभु चरित्र सुनिबे को रसिया। राम लखन सीता मन बसिया ।।
सूक्ष्म रूप धरि सियहिं दिखावा। बिकट रूप धरि लंक जरावा ।।
भीम रूप धरि असुर संहारे। रामचंद्र के काज संवारे ।।
लाय सजीवन लखन जियाये। श्री रघुबीर हरषि उर लाये ।।
रघुपति कीन्ही बहुत बड़ाई। तुम मम प्रिय भरतहि सम भाई ।।
सहस बदन तुम्हरो जस गावैं। अस कहि श्रीपति कंठ लगावैं ।।
सनकादिक ब्रह्मादि मुनीसा। नारद सारद सहित अहीसा ।।
जम कुबेर दिगपाल जहां ते। कबि कोबिद कहि सके कहां ते ।।
तुम उपकार सुग्रीवहिं कीन्हा। राम मिलाय राज पद दीन्हा ।।
तुम्हरो मंत्र बिभीषन माना। लंकेस्वर भए सब जग जाना ।।
जुग सहस्र जोजन पर भानू। लील्यो ताहि मधुर फल जानू ।।
प्रभु मुद्रिका मेलि मुख माहीं। जलधि लांघि गये अचरज नाहीं ।।
दुर्गम काज जगत के जेते। सुगम अनुग्रह तुम्हरे तेते ।।
राम दुआरे तुम रखवारे। होत न आज्ञा बिनु पैसारे ।।
सब सुख लहै तुम्हारी सरना। तुम रक्षक काहू को डर ना ।।
आपन तेज सम्हारो आपै। तीनों लोक हांक तें कांपै ।।
भूत पिसाच निकट नहिं आवै। महाबीर जब नाम सुनावै ।।
नासै रोग हरै सब पीरा। जपत निरंतर हनुमत बीरा ।।
संकट तें हनुमा न छुड़ावै। मन क्रम बचन ध्यान जो लावै ।।
सब पर राम तपस्वी राजा। तिन के काज सकल तुम साजा ।।
और मनोरथ जो कोई लावै। सोइ अमि त जीवन फल पावै ।।
चारों जुग परताप तुम्हारा। है परसिद्ध जगत उजियारा ।।
साधु संत के तुम रखवारे। असु र निकंदन राम दुलारे ।।
अष्ट सिद्धि नौ निधि के दाता। अस बर दीन जानकी माता ।।
राम रसायन तुम्हरे पासा। सदा रहो रघुपति के दासा ।।
तुम्हरे भजन राम को पावै। जनम जनम के दुख बिसरावै ।।

**अन्तकाल रघुबर पुर जाई। जहां जन्म हरि भक्त कहाई ।।**
**और देवता चित्त न धरई। हनुमत सेइ सर्ब सुख करई ।।**
**संकट कटै मिटै सब पीरा। जो सुमिरै हनुमत बलबीरा ।।**
**जै जै जै हनुमान गोसाईं। कृपा करहु गुरुदेव की नाईं ।।**
**जो सत बार पाठ कर कोई। छूटहि बंदि महा सुख होई ।।**
**जो यह पढ़ै हनुमान चालीसा। होय सिद्धि साखी गौरीसा ।।**
**तुलसीदास सदा हरि चेरा। कीजै नाथ हृदय मंह डेरा ।।**

**पवन तनय संकट हरन, मंगल मूरति रूप ।**
**राम लखन सीता सहित, हृदय बसहु सुर भूप ।।**

इसके पश्चात होलिका की ३ या ७ बार परिक्रमा करते हुए कच्चा सूत लपेटें और होलिका पर गुलाल व रोली चढ़ाएं। अब पुष्प एवं मिठाइयां होलिका को समर्पित कर दें। गेंहूं अथवा जौ कि बालियां अग्नि में भून लें। बालियां भुनने के पश्चात लोटे का जल होलिका पर चढ़ाकर निम्न मन्त्र के उच्चारण के साथ पूजा समापन करें ।

**ॐ ब्रह्मार्पणमस्तु ।**

पूजा समाप्ति पर होलिका से अग्नि में भुनी हुई बालियांयों को परिवार एवं मित्रों में बाँटें तथा प्रसाद रूप में पाएं। ऐसा वर्णित है कि इससे आप सदैव निरोग रहेंगे।

ईश्वर और माँ आपको सुख, शान्ति और समृद्धि प्रदान करें।

# अनमोल वचन - वेदों से उद्धृत

**अन्यायोपार्जितं वित्तं दस वर्षाणि तिष्ठति ।**
**प्राप्ते चैकादशेवर्षे समूलं तद् विनश्यति ।।**

अनुचित पद्धति और अन्याय से कमाया हुआ धन १० वर्षों तक ही संचित रह सकता है। वह धन अपने मूलधन सहित पूरा ग्यारहवें वर्ष में नष्ट हो जाता है।

**आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः ।**
**नास्त्युद्यमसमो बन्धुः कृत्वा यं नावसीदति ।।**

व्यक्ति का सबसे बड़ा शत्रु आलस्य है। व्यक्ति का परिश्रम ही उसका सच्चा मित्र है। मनुष्य जब भी परिश्रम करता है, तो वह दुखी नहीं होता और हमेशा प्रसन्न ही रहता है।

**उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः ।**
**न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः ।।**

व्यक्ति के मेहनत करने से ही उसके काम पूरे होते हैं, सिर्फ इच्छा करने से नहीं। जैसे सोये हुए शेर के मुंह में हिरण स्वयं नहीं आता, उसके लिए शेर को परिश्रम करना पड़ता है।

**काक चेष्टा, बको ध्यानं, स्वान निद्रा तथैव च ।**
**अल्पहारी, गृहत्यागी, विद्यार्थी पंच लक्षणं ।।**

कौए के समान चेष्टा, बगुले के समान ध्यान, कुत्ते के समान नींद और गृहत्यागी यह विद्यार्थी के पांच लक्षण होते है।

**ददाति प्रतिगृह्णाति गुह्यमाख्याति पृच्छति ।**
**भुङ्क्ते भोजयते चैव षड्विधं प्रीतिलक्षणम् ।।**

लेना, देना, खाना, खिलाना, रहस्य बताना और उन्हें सुनना ये सभी ६ प्रेम के लक्षण है।

**अनादरो विलम्बश्च वै मुख्यम निष्ठुर वचनम ।**
**पश्चतपश्च पञ्चापि दानस्य दूषणानि च ।।**

अपमान करके दान देना, मुंह फेर कर दान देना, देरी से देना, कठोर वचन बोलकर दान देना और दान देने के बाद पश्चाताप करना, ये सभी ५ क्रियाएं दान को दूषित कर देती है।

**वाणी रसवती यस्य,यस्य श्रमवती क्रिया ।**
**लक्ष्मी : दानवती यस्य,सफलं तस्य जीवितं ।।**

जिस मनुष्य की वाणी मीठी हो, जिसका काम परिश्रम से भरा हो, जिसका धन दान में प्रयुक्त हो, उसका जीवन सफल है।

**श्वः कार्यमद्य कुर्वीत पूर्वान्हे चापरान्हिकम् ।**
**न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतमस्य न वा कृतम् ।।**

जिस काम को कल करना है उसे आज, और जो काम शाम के समय करना हो, उसे सुबह के समय ही पूर्ण कर लेना चाहिए। क्योंकि मृत्यु कभी यह नहीं देखती कि इसका काम अभी भी बाकी है।

**मुख्य सम्पादक डॉ यतेंद्र शर्मा** - सन १९५३ में एक हिन्दू सनातन परिवार में जन्मे डॉ यतेंद्र शर्मा की रूचि बचपन से ही सनातन धर्म ग्रंथों का पठन पाठन एवं श्रवण में रही है। संस्कृत की प्रारम्भिक शिक्षा उन्होंने अपने पितामह श्री भगवान् दास जी एवं नरवर संस्कृत महाविद्यालय के प्राचार्य श्री सालिग्राम अग्निहोत्री जी से प्राप्त की और पांच वर्ष की आयु में महर्षि पाणिनि रचित संस्कृत व्याकरण कौमुदी को कंठस्थ किया। उन्होंने तकनीकी विश्वविद्यालय ग्राज़ ऑस्ट्रिया से रसायन तकनीकी में पी।अच्।डी की उपाधी विशिष्टता के साथ प्राप्त की। सन १९८९ से डॉ यतेंद्र शर्मा अपने परिवार सहित पर्थ ऑस्ट्रेलिया में निवास कर रहें हैं, तथा पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया के खनन उद्योग में कार्य रत हैं।

सन २०१६ में उन्होंने अपने कुछ धार्मिक मित्रों के साथ एक धार्मिक संस्था 'श्री राम कथा संस्थान पर्थ' की स्थापना की। यह संस्था श्री भगवान् स्वामी रामानंद जी महाराज (१४वीं- १५वीं शताब्दी) की शिक्षाओं से प्रभावित है तथा समय समय पर गोस्वामी तुलसी दास जी रचित श्री राम चरित मानस एवं अन्य धार्मिक कथाओं का प्रवचन, सनातन धर्म के महान संतों, ऋषियों, माताओं का चरित्र वर्णन एवं धार्मिक कथाओं के संकलन में अपना योगदान करने का प्रयास करती है।

## श्री राम कथा संस्थान पर्थ

**कार्यालय:** ३५ मायना रिट्रीट, हिलरीज, पर्थ, ऑस्ट्रेलिया – ६०२५
**वेबसाइट:** https://shriramkatha.org
**ई-मेल:** srkperth@outlook.com
**टेलीफोन:** +६१ (०८) ९४०१ १५४३